हीरक जयन्ती प्रकाशनमाला पुष्प सख्या–२८

प्रेरक : उपाध्याय मुनिश्री भरतसागरजी महाराज

निर्देशक : आर्यिका स्याद्वादमती माताजी

प्रबंध सपादक : ब्र० धर्मचन्द शास्त्री, ब्र० कु० प्रभा पाटनी

ग्रन्थ : **श्रुतावतार**

प्रणेता : आचार्य इन्द्रनन्दि

संस्करण : प्रथम प्रतियाँ १०००
वि० स० २०४६–४७ सन् १९८९–९०

प्रकाशक : भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

प्राप्ति स्थान : (१) आचार्य विमलसागरजी सघ
(२) अनेकान्त सिद्धान्त समिति, लोहारिया, बाँसवाडा [राजस्थान]
(३) श्री दि० जैन मन्दिर, गुलाबवाटिका, लोनी रोड, दिल्ली

मूल्य : १० . रुपया

मुद्रक : कमल प्रिंटिंग प्रेस
मेलूपुर, वाराणसी–१०

समर्पण

चारित्र शिरोमणि

सन्मार्ग दिवाकर

करुणा निधि

वात्सल्य मूर्ति

अतिशय योगी—

तीर्थोद्धारक चूडामणि—

अपाय विचय धर्मध्यान के ध्याता

शान्ति-सुधामृत के दानी

वर्तमान मे धर्म-पतितो के उद्धारक

ज्योति पुञ्ज—

पतितो के पालक

तेजस्वी अमर पुञ्ज

कल्याणकर्त्ता, दुःखो के हर्ता, समदृष्टा

बीसवी सदी के अमर सन्त

परम तपस्वी, इस युग के महान् साधक

जिनभक्ति के अमर प्रेरणास्रोत

पुण्य पुञ्ज—

गुरुदेव आचार्यवर्य श्री 108

श्रीविमलसागर जी महाराज के कर-कमलो मे

"ग्रन्थराज"

समर्पित

तुभ्यं नम· परम धर्म प्रभावकाय ।
तुभ्य नम· परम तीर्थ सुवन्दकाय ॥
"स्याद्वाद" सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय ।
तुभ्यं नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥

आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज

उपाध्याय श्री भरत सागर जी महाराज

सोनागिर
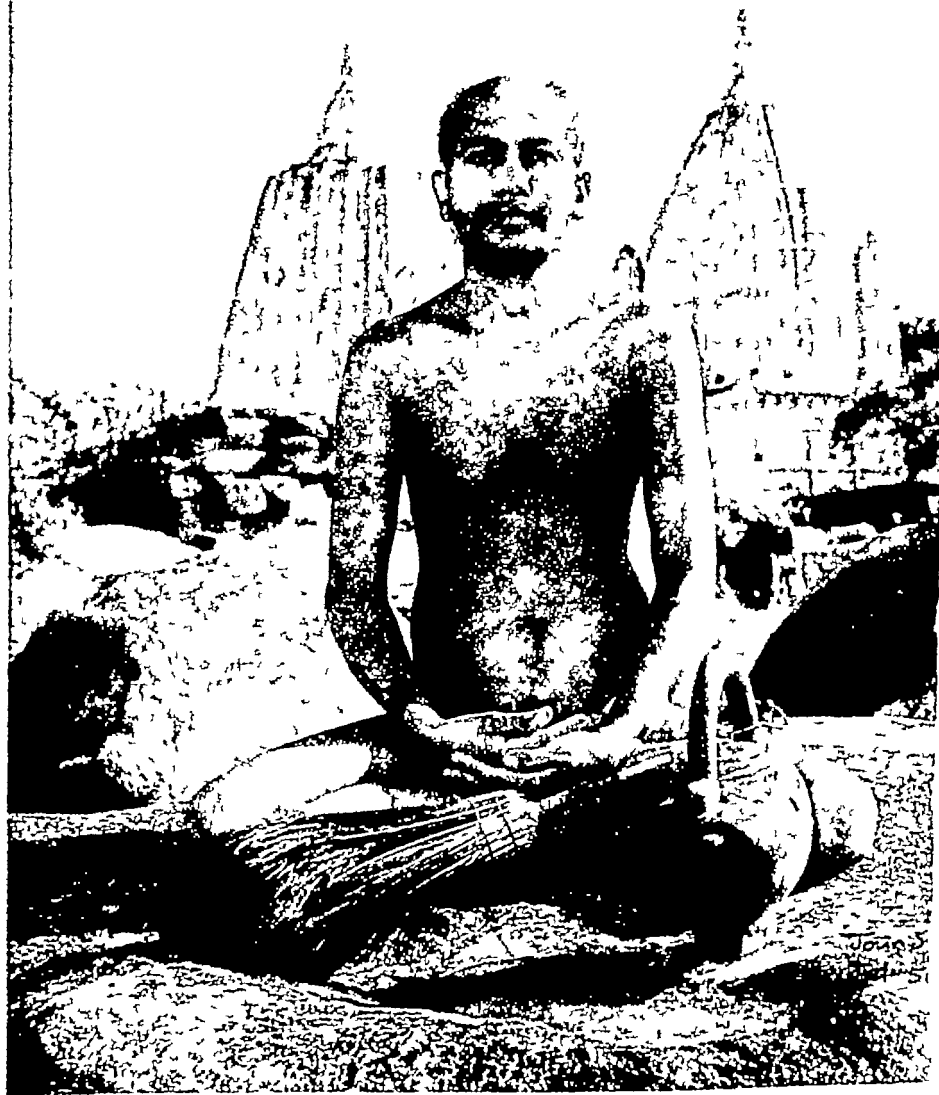
॥ आशीर्वाद ॥

विगत कतिपय वर्षों से जैनागम को दूषित करने वाला एक प्रवाह मिला ऐसा चल गया कि सत्यपर असत्य का आवरण आने लगा — एकान्तवाद - निश्चयाभास तूल पकड़ने लगा।

आज के इस भौतिक युग में असत्य को अपना प्रभाव फैलाने में विशेष श्रम नहीं करना होता, पर कटु सत्य है, कारण जीव के मिथ्या संस्कार अनादिकाल से चले आरहे हैं। विगत ७०-८० वर्षों में एकान्तवाद ने जैनत्व का टीका लगा कर निश्चय नय की आड़ में स्याद्वाद को पीछे धकेलने का प्रयास किया है। मिथ्या साहित्य का प्रचार-प्रसार किया है। आचार्य कुन्द कुन्द की आड़ लेकर अपनी ख्याति चाही है और शास्त्रों में आचार्य बदल दिए हैं अर्थ का अनर्थ कर दिया है।

सज्जनों ने अपनी क्षमता पर 'एकान्त' से लोहा लिया है पर वे अपनी ओर से जनता को अपेक्षित सत्साहित्य सुलभ नहीं करा पाए। आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज का हीरक जयन्ती वर्ष हमारे लिए एक स्वर्णिम अवसर लेकर आया है। आर्यिका स्याद्वादमती माताजी ने आचार्य श्री एवं हमारे सान्निध्य में एक संकल्प लिया, कि पूज्य आचार्य श्री की हीरक जयन्ती के अवसर पर आर्ष साहित्य का प्रचुर प्रकाशन हो और वह जन जन को सुलभ हो। फलतः ७५ आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन का निश्चय किया गया है क्योंकि सत्यसूर्य के तेजस्वी होने पर असत्य अंधकार स्वतः ही पलायन कर जाता है।

आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु जिन दातारभाइयों ने अपनी स्वीकृति दी है एवं प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जिस किसी ने भी इस महदनुष्ठान में किसी भी प्रकार का सहयोग किया है उन सबको हमारा आशीर्वाद है।

उपाध्याय भरतसागर

ता ११-७ १९९१

'सङ्कल्प'

'णाण पयास' सम्यग्ज्ञान का प्रचार-प्रसार केवलज्ञान का वीज है। आज कलयुग में ज्ञान प्राप्ति की तो होड लगी है। पदवियाँ और उपाधियाँ जीवन का सर्वस्व बन चुकी है परन्तु सम्यग्ज्ञान की ओर मनुष्यों का लक्ष्य ही नही है।

जीवन में मात्र ज्ञान नही, सम्यग्ज्ञान अपेक्षित है। आज तथाकथित अनेक विद्वान् अपनी मनगढन्त वातो की पुष्टि पूर्वाचार्यों की मोहर लगाकर कर रहे हैं। ऊटपटाग लेखनियाँ सत्य की श्रेणी मे स्थापित की जा रही हैं कारण पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थ आज सहज सुलभ नही है और उनके प्रकाशन व पठन-पाठन की जैसी और जितनी रुचि अपेक्षित है, वैसी और उतनी दिखाई नही देती।

असत्य को हटाने के लिए पर्चेबाजी करने या विशाल सभाओ में प्रस्ताव पारित करने मात्र से कार्यसिद्धि होना अशक्य है। सत्साहित्य का जितना अधिक प्रकाशन व पठन-पाठन प्रारम्भ होगा, असत् का पलायन होना। अपनी सस्कृति की रक्षा के लिए आज सत्साहित्य के प्रचुर प्रकाशन की महती आवश्यकता है—

येनैते विदलन्ति वादि गिरयस्तुष्यन्ति वागीश्वरा
भव्या येन विदन्ति निर्वृति पद मुञ्चन्ति मोह बुधा।
यद् बन्धुर्यन्मित्रं यदक्षयसुखस्याधारभूत मत,
तल्लोकत्रयशुद्धिदं जिनवच पुण्याद् विवेकश्रियम्॥

सन् १९८४ से मेरे मस्तिष्क में यह योजना बन रही थी परन्तु तथ्य यह है कि "सङ्कल्प" के विना सिद्धि नही मिलती। सन्मार्ग दिवाकर आचार्य १०८ श्री विमलसागर जी महाराज की हीरक-जयन्ती के मागलिक अवसर पर माँ जिनवाणी की सेवा का यह सङ्कल्प मैंने प० पू० गुरुदेव आचार्यश्री व उपाध्यायश्री के चरण-सानिध्य में लिया। आचार्यश्री व उपाध्यायश्री का मुझे भरपूर आशीर्वाद प्राप्त हुआ। फलत इस कार्य में काफी हद तक सफलता मिली है।

इस महान् कार्य में विशेष सहयोगी प० धर्मचन्द जी व प्रभा जो पाटनी रहे, इन्हें व प्रत्यक्ष-परोक्ष मे कार्यरत सभी कार्यकर्त्ताओ के लिए मेरा आशीर्वाद है।

पूज्य गुरुदेव के पावन चरण-कमलो में सिद्ध-श्रुत-आचार्यभक्तिपूर्वक नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

सोनागिर, ११-७-९०

आर्यिका स्याद्वादमती

आभार

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूडामणि-
स्तद्वाच• परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्योतिका ।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तेषा समालम्बन,
तत्पूजा जिनवाचिपूजनमत साक्षाज्जिन पूजित ।। पद्मनदी प० ।।

वर्तमान में इस कलिकाल मे तीन लोक के पूज्य केवली भगवान् इस भरतक्षेत्र में साक्षात् नही हैं तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान् की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधारस्तम्भ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं। इसीलिए उन मुनियो का पूजन तो सरस्वती का पूजन है, तथा सरस्वती का पूजन साक्षात् केवली भगवान् का पूजन है।

आर्ष परम्परा की रक्षा करते हुए आगम पथ पर चलना भव्यात्माओं का कर्त्तव्य है। तीर्थंकर के द्वारा प्रत्यक्ष देखी गई, दिव्यध्वनि में प्रस्फुटित तथा गणधर द्वारा गुथित वह महान् आचार्यों द्वारा प्रसारित जिनवाणी की रक्षा प्रचार-प्रसार मार्ग प्रभावना नामक एक भावना तथा प्रभावना नामक सम्यग्दर्शन का अग है।

युगप्रमुख आचार्यश्री के हीरक जयती वर्ष के उपलक्ष्य में हमें जिनवाणी के प्रसार के लिए एक अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। वर्तमान युग में आचार्यश्री ने समाज व देश के लिए अपना जो त्याग और दया का अनुदान दिया है वह भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। ग्रन्थ प्रकाशनार्थ हमारे सान्निध्य या नेतृत्व प्रदाता पूज्य उपाध्यायश्री भरतसागरजी महाराज व निर्देशिका तथा जिन्होंने परिश्रम द्वारा ग्रन्थो की खोजकर विशेष सहयोग दिया, ऐसी पूज्या आ० स्याद्वादमती माताजी के लिए मैं शत-शत नमोस्तु-वंदामि अर्पण करती हूँ। साथ ही त्यागीवर्ग, जिन्होंने उचित निर्देशन दिया उनको शत-शत नमन करती हूँ एवं ग्रन्थ प्रकाशनार्थ अमूल्य निधि का सहयोग देने वाले द्रव्यदातारों की मैं आभारी हूँ तथा यथासमय शुद्ध ग्रन्थ प्रकाशित करने वाले कमल प्रिंटिंग प्रेस की भी मैं आभारी हूँ। अन्त में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे सभी सहयोगियो के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हुए सत्य जिनशासन की, जिनागम की भविष्य में इसी प्रकार रक्षा करते रहें, ऐसी भावना करती हूँ।

ब्र० प्रभा पाटनी संघस्थ

प्रकाशकीय

इस परमाणु युग में मानव के अस्तित्व को हो नही अपितु प्राणिमात्र के अस्तित्व की सुरक्षा की समस्या है। इस समस्या का निदान 'अहिसा' अमोघ अस्त्र से किया जा सकता है। अहिसा जैनधर्म-सस्कृति की मूल आत्मा है। यही जिनवाणो का सार भी है।

तीर्थंकरो के मुख से निकली वाणी को गणधरो ने ग्रहण किया और आचार्यों ने निबद्ध किया जो आज हमें जिनवाणी के रूप में प्राप्त है। इस जिनवाणी का प्रचार-प्रसार इस युग के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यही कारण है कि हमारे आराध्य पूज्य आचार्य, उपाध्याय एव साधुगण जिनवाणी के स्वाध्याय और प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।

उन्ही पूज्य आचार्यों में से एक हैं सन्मार्ग दिवाकर, चारित्र चूडामणि, परम पूज्य आचार्यवर्य विमलसागर जी महाराज। जिनकी अमृतमयी वाणी प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारी है। आचार्यवर्य की हमेशा भावना रहती है कि आज के समय में प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थो का प्रकाशन हो और मन्दिरो में स्वाध्याय हेतु रखे जाएँ जिसे प्रत्येक श्रावक पढकर मोह रूपी अन्धकार को नष्ट-कर ज्ञानज्योति जला सकें।

जैनधर्म की प्रभावना जिनवाणी के प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में हो, आर्ष परम्परा की रक्षा हो एव अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर का शासन निरन्तर अबाधगति से चलता रहे। उक्त भावनाओ को ध्यान में रखकर परम पूज्य ज्ञान दिवाकर, वाणीभूषण उपाध्यायरत्न भरतसागर जी महाराज एव आर्यिकारत्न स्याद्वादमती माता जी की प्रेरणा व निर्देशन में परम पूज्य आचार्य विमल सागर जी महाराज की 74वी जन्म-जयन्ती के अवसर पर 75वी जन्म-जयन्ती के रूप में मनाने का सकल्प समाज के सम्मुख भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

ने लिया। इस अवसर पर 75 ग्रन्थो के प्रकाशन की योजना के साथ ही भारत के विभिन्न नगरो मे 75 धार्मिक शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जा रहा है और 75 पाठशालाओ की स्थापना भी की जा रही है। इस ज्ञान यज्ञ में पूर्ण सहयोग करने वाले 75 विद्वानो का सम्मान पत्र 75 युवा विद्वानो को प्रवचन हेतु तैयार करना तथा 7775 युवा वर्ग से सप्तव्यसन का त्याग करना आदि योजनाएँ इस हीरक जयन्ती वर्ष में पूर्ण की जा रही हैं।

सम्प्रति आचार्यवर्य पू० विमलसागर जो महाराज के प्रति देश एव समाज अत्यन्त कृतज्ञता ज्ञापन करता हुआ उनके चरणो में शत-शत नमोऽस्तु करके दीर्घायु की कामना करता है। ग्रन्थो के प्रकाशन मे जिनका अमूल्य निर्देशन एव मार्गदर्शन मिला है, वे पूज्य उपाध्याय भरतसागर जी महाराज एव माता स्याद्वादमती जी हैं। उनके लिए मेरा क्रमश नमोऽस्तु एव वन्दामि अर्पण है।

उन विद्वानो का भी आभारी हूँ जिन्होने ग्रन्थो के प्रकाशन में अनुवादक/सम्पादक एवं सशोधक के रूप मे सहयोग दिया है। ग्रन्थो के प्रकाशन में जिन दाताओ ने अर्थ का सहयोग करके अपनी चचलता लक्ष्मी का सदुपयोग करके पुण्यार्जन किया, उनको धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। ये ग्रन्थ विभिन्न प्रेसो मे प्रकाशित हुए। एतदर्थ उन प्रेस सचालको को जिन्होने बडी तत्परता से प्रकाशन का कार्य किया, धन्यवाद देता हूँ। अन्त में उन सभी सहयोगियों का आभारी हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष-परोक्ष मे सहयोग प्रदान किया है।

ब्र० पं० धर्मचन्द शास्त्री

अध्यक्ष

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भूमिका

आचार्य इन्द्रनन्दि और उनका श्रुतावतार

श्रीमद्-इन्द्रनन्दि आचार्य विरचित "श्रुतावतार" नामक प्रस्तुत गौरवशाली ग्रन्थ श्रमण जैन परम्परा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। एकसौ सत्तासी संस्कृत पद्यो वाला यह ग्रन्थ जहाँ एक श्रेष्ठ काव्य है, वही प्राचीन भारतीय इतिहास की लेखन-परम्परा का एक आदर्श, दुर्लभ एव बहुमूल्य ग्रन्थ भी है। हमारे प्राचीन आचार्यो ने स्व-पर कल्याण एव निरन्तर परम्परा जीवत रखने के उद्देश्य से यद्यपि तत्त्वज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, साहित्य, सगीत, पुराण, काव्य, गणित, कला, कोश, व्याकरण एव आयुर्वेद आदि सभी विषयो से सम्बन्धित विपुल साहित्य का सृजन किया है किन्तु साहित्य और उनके स्रष्टाओं के इतिहास का सजीव चित्रण जिस तरह प्रस्तुत "श्रुतावतार" ग्रन्थ में किया है, वैसे ग्रन्थ सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में बहुत कम उपलब्ध हैं।

वस्तुत जैनधर्म-दर्शन, सस्कृति एव साहित्य की समृद्धि और उसकी प्राचीन परम्परा का जो योगदान है, उसका अन्तर्राष्ट्रीय एव राष्ट्रीय स्तर पर जो महत्त्व, गौरव एव मूल्याकन प्राप्त होना चाहिए वह कुछ पक्षपातवश भी नही हो रहा है। उसके उचित प्रचार-प्रसार की दिशा मे कमी के भागीदार, उस सम्पूर्ण विरासत के उत्तराधिकारी हम लोग भी कम नही हैं? किन्तु अब जैसे-जैसे भारतीय इतिहास, साहित्य, कला-सस्कृति, भाषा विज्ञान एव पुरातात्त्विक साक्ष्यों आदि का अध्ययन हो रहा है वैसे-वैसे श्रमण सस्कृति की प्राचीनता एवं समृद्धि आदि का अध्ययन भी आगे बढ़ रहा है। जैनेतर विद्वान् भी इसमे ज्यादा रुचि लेने लगे हैं। हमारे आचार्यों ने विविध विधाओ में साहित्य की रचना तो विपुल मात्रा में की किन्तु उन्होंने अपने एव अपनी परम्परा के विषय मे बहुत कम सूचनायें दी। वस्तुत आत्म-श्लाघा से दूर रहकर स्व-पर कल्याण ही उनके जीवन एवं साहित्य सृजन का उद्देश्य था। इससे ज्यादा प्रमाण और क्या हो सकता है कि प्रस्तुत श्रुतावतार ग्रन्थ मे आचार्य इन्द्रनन्दि ने जैन परम्परा का बहुत ही सुन्दर इतिहास सजोया है किन्तु उन्होने अपने नाम के अतिरिक्त स्वयं अपने विषय में अथवा अपनी परम्परा के विषय में कोई जानकारी नही दी।

जैन साहित्य के इतिहास में 'इन्द्रनन्दि' नाम के लगभग पाँच आचार्यों का नामोल्लेख विभिन्न प्रसंगो, विभिन्न ग्रन्थकर्ताओ, परम्पराओं एव विभिन्न कालों में मिलता है। किन्तु श्रुतावतार के कर्ता आचार्य इन्द्रनन्दि के समय का निर्धारण इस ग्रन्थ से ही हम कर सकते हैं। चूंकि इन्होने आचार्य वीरसेन (९ वी शती) एव जिनसेन (१० वी शती) तक के ही आचार्यों और इनकी धवला, जयधवला टीकायें, जो कि क्रमश षट्खण्डागम तथा कसायपाहुडसुत्त पर लिखी गई है, के ही विस्तृत परिचय अपने इस श्रुतावतार ग्रन्थ में लिखे है। इनके बाद के आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (११ वी शती) आदि और उनकी रचनाओ का विवरण नही दिया। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रनन्दि १०वीं शती के आचार्य हैं। इन्द्रनन्दि की यही एक मात्र कृति है। किन्तु इस एकमात्र उत्कृष्ट कृति से इतिहास-साहित्य को समृद्ध करके वे सदा के लिए अमर हो गये। इस कृति में उनकी विद्वत्ता, विविध शास्त्रो एव उनके विषयो का तलस्पर्शी ज्ञान तथा अपने समय तक की सम्पूर्ण जैन परम्परा का अच्छा ज्ञान प्रत्येक श्लोक में स्पष्ट झलकता है। उस समय परस्पर सम्पर्क, जानकारी आदि साधनो का बहुत अभाव था, फिर भी इन सबके बावजूद इतना विस्तृत विवरण सजोकर ग्रन्थ रूप में सफलतापूर्वक निबद्ध कर लेना, बहुत बडी बात है। श्रुतावतार की भाषा, शैली, भाव एव विषय आदि देखते ही बनता है। गणधर के अभाव में जब तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि छ्यासठ दिन तक नही खिरी, तब इन्द्र छात्र का वेश धारण करके गौतमग्राम की ब्राह्मणशाला में जाकर गौतम से पढ़ते समय उनसे जिस छन्द का अर्थ पूछता है वह इस दृष्टि से द्रष्टव्य है—

षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान् ।
विदुषा वरः स एव हि यो जानाति प्रमाण नयैः ॥ ५२ ॥

इसके आगे और पूर्व के प्रसंग भी अत्यन्त सरल, सुबोध एव थोडे शब्दों मे अधिक भावो को अभिव्यजना की क्षमता रखते है। उनके पास अपने सीमित साधनो से जितना और जिस रूप में बन सका, उन्होने दिगम्बर परम्परा का इतिहास लिखा। यद्यपि अन्य ग्रन्थों में भी हमारी आचार्य परम्परा के उल्लेख

मिलते हैं किन्तु अनेक दृष्टियों से इस श्रुतावतार का बहुत महत्त्व है।

श्रुत शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ करते हुए आचार्य पूज्यपाद ने कहा है 'तदावरणकर्म क्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रूयते अनेन शृणोति श्रवणमात्र वा श्रुतम् (सर्वार्थसिद्धि १ ९.) तथा—केवलिभिरुपदिष्ट बुद्धयतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृत ग्रन्थरचन श्रुत भवति' (सर्वार्थसिद्धि ६ १३) अर्थात् श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र 'श्रुत' कहलाता है। तथा केवली द्वारा उपदिष्ट और अतिशय बुद्धि-ऋद्धियुक्त गणधरदेव, उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रन्थों की रचना करते हैं वह 'श्रुत' कहलाता है।

आचार्य अकलंकदेव के अनुसार "श्रुत" शब्द कर्म साधन भी होता है। श्रुतज्ञानावरण कर्म क्षयोपशम आदि अंतरग-बहिरग कारणों के सन्निधान होने पर जो सुना जाय वह 'श्रुत' है। कर्तृसाधन में श्रुत परिणत आत्मा ही सुनता है वह 'श्रुत' हैं। करण (भेद) विवक्षा में जिससे सुना जाता है वह 'श्रुत' है और भाव साधन में श्रवण क्रिया मात्र को 'श्रुत' कहते हैं। (तत्त्वार्थवार्तिक १ ९ २)

इस तरह के 'श्रुत' के अवतरण की परम्परा और उसका वृत्तान्त इन्द्रनदि ने अपने इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किया हैं। इसमें उन्होंने भरत क्षेत्र की स्थिति, सुषमा-सुषमा काल के भेदो का विवेचन कुलकर व्यवस्था का क्रमश प्रतिपादन करते हुए प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अन्तिम एव चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान-महावीर तक की परम्परा और उनकी विशेषताओ का संक्षेप में वर्णन किया है। तीर्थंकर महावीर और उनके गणधरो का विशेषकर गौतम गणधर का कुछ विस्तार से वृत्तान्त प्रस्तुत करते हुए उनके बाद की परम्परा का और वर्तमान में आशिक रूप में उपलब्ध श्रुत (आगमज्ञान) के मूल का कालक्रमानुसार जो इतिहास प्रस्तुत किया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पद्य सख्या ७५ मे कहा है—गौतम गणधर, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी अनुबद्ध केवली की सम्पदा को प्राप्त थे। इनके मोक्ष चले जाने के बाद ही इस भरत क्षेत्र से केवलज्ञान रूप सूर्य अस्त हो गया। अर्थात् इनके बाद किसी को केवलज्ञान नही हुआ। जम्बू-

स्वामी के बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु—ये पाँच श्रुत-केवली हुए। इसके बाद विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृति, विजय, बुद्धिल, गगदेव और धर्मसेन—ये ग्यारह आचार्य दशपूर्वधारी हुए। इनके बाद नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कसं—ये पाँच एकादशागधारी हुए तथा इनके बाद सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु और लोहार्य—ये चारों आचारांग-धारी हुए। इनके बाद की भी यहाँ आचार्य परम्परा प्रस्तुत की गई है किन्तु षट्खण्डागम आदि ग्रन्थो एवं कुछ पट्टावलियो में उपलब्ध परम्परा से कुछ नामों में यहाँ अन्तर सम्भवत प्राकृत भाषा से सस्कृत रूपान्तर एवं लिपि आदि के कारण ही प्राप्त होता है। आ० अर्हद्वलि द्वारा जैन परम्परा में विभिन्न सघों की स्थापना आदि का भी संक्षेप में यहाँ वृत्तान्त दिया गया है। आचार्य अर्हद्बलि के बाद माघनन्दि का भी यहाँ उल्लेख है। इसके बाद आचार्य धरसेन और फिर इनके द्वारा आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को प्रदत्त श्रुतज्ञान, षट्खण्डागम नामक ग्रन्थराज पुस्तकारूढ होने, श्रुत पंचमी पर्व प्रचलित होने आदि से लेकर आचार्य गुणधर एव उनके द्वारा रचित कसायपाहुडसुत्त तथा इन दोनो सिद्धान्त ग्रन्थो पर रचित धवला एवं जयधवला टीका आदि का विस्तृत परिचय जिस भाषा, भाव और शैली मे प्रस्तुत किया गया है वह मर्मस्पर्शी एव हृदयग्राही है।

इन गौरवशाली अपनी प्राचीन परम्पराओ का जब-जब हम अध्ययन करते हैं तब-तब हमें षट्खण्डागम के प्राक्कथन (भाग १ पृष्ठ ५–७) में सुप्रसिद्ध मनीषि विद्वान् स्व० डॉ० हीरालाल जैन द्वारा प्रस्तुत मार्मिक विचारो की ओर ध्यान जाता है, (जिसमें उन्होंने कहा है कि—'हृदय के पवित्र और दृढता के लिए हमारा ध्यान पुन हमारे तीर्थंकर भ० महावीर और उनको धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि तक की आचार्य परम्परा की ओर जाता है, जिसके प्रसाद-लव से हमे यह साहित्य प्राप्त हुआ है। तीर्थंकरो और केवलज्ञानियों का जो विश्वव्यापी ज्ञान द्वादशाग साहित्य में ग्रथित हुआ था, उससे सीधा सम्बन्ध रखनेवाला केवल इतना ही साहित्याश बचा है, जो धवल, जयधवला और महाधवल कहलाने वाले ग्रन्थो में निबद्ध है। दिगम्बर मान्यतानुसार शेष सब काल के गाल में समा गया।)

किन्तु जितना भी शेष बचा है वह भी विषय और रचना की दृष्टि से हिमालय जैसा विशाल और महोदधि जैसा गभीर है। हम ऐसी उच्च और विपुल साहित्यिक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं—इसका हमें भारी गौरव है। आजकल साहित्य रक्षा का इससे बढकर दूसरा कोई उपाय नही कि ग्रंथो की हजारो प्रतियाँ छपाकर सर्वत्र फैला दी जांय ताकि किसी भी अवस्था में उनका अस्तित्व बना ही रहेगा।

इस तरह श्रुत (शास्त्र) परम्परा की रक्षा का सबसे अच्छा उपाय है—उसके अध्ययन-अध्यापन एव स्वाध्याय की परम्परा जीवित रखना और दुर्लभ साहित्य का प्रकाशन करना। इस दृष्टि से पूज्य १०८ आचार्यश्री विमलसागर जी की हीरक जयन्ती की सर्वाधिक सार्थकता इस उपलक्ष्य में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन है। इस योजना के मूलप्रेरक पूज्य उपाध्याय श्री भरतसागर जी एवं पूज्य आर्यिका स्याद्वादमती माताजी का इस योजना को साकार रूप देने के लिए कृतज्ञ हैं। श्री अनेकान्त विद्वत्-परिषद्, सोनागिर के माध्यम से प्रकाशित इस ग्रन्थ के अनुवादक मान्यवर प० विजयकुमार जी शास्त्री एव सम्पादक उपाध्याय श्री भरतसागरजी महाराज है। उत्साही युवा विद्वान् ब्र० धर्मचन्द्र शास्त्री तथा ब्र० कु० प्रभा पाटनी बधाई के पात्र हैं। इसी तरह स्तरीय, दुर्लभ तथा उपयोगी सत्साहित्य का प्रकाशन, प्रचार-प्रसार और स्वाध्याय निरन्तर होता रहे, यही हमारी शुभ भावना है। साथ ही विद्वानो और समाज के कर्णधारो से यह भी आग्रह है कि वे इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो को विद्यालयों एव विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमो में भी सम्मिलित कराने हेतु प्रयत्न अवश्य करें, ताकि इनके महत्त्व का सही मूल्याकन हो सके।

दि० २८–११–९०

निवास—पी ३/२ लेन न० १३
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी–५

डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी
अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी–२२१००२

श्रीमद्-इन्द्रनन्दि-आचार्य-विरचितः

श्रुतावतारः

सर्वनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरम्परंदेवम् ।
प्रणिपत्य वर्धमानं श्रुतस्य वक्ष्येऽहमवतारम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(अहम्) मैं [ग्रन्थकर्ता इन्द्रनन्दी] (सर्वनाकीन्द्र वन्दितकल्याणपरम्पर) समस्त देवेन्द्रो द्वारा वन्दित कल्याण परम्परा वाले (देव) [देवाधिदेव वीतराग] देव (वर्धमान) अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी को (प्रणिपत्य) नमन करके (श्रुतस्य) श्रुतज्ञान के निधान रूप आगम-शास्त्रो के (अवतार) अवतरण रूप उत्पत्ति को (वक्ष्ये) कहूँगा या कहता हूँ।

अर्थ—श्री इन्द्रनन्दी आचार्य ग्रन्थ-रचना की प्रतिज्ञा करते हुए तथा ग्रन्थ का 'श्रुतावतार' नाम देते हुए सर्वप्रथम उन महावीर भगवान् को नमस्कार करते हैं जिनका एक नाम वर्द्धमान है जिनके गर्भ-जन्म-दीक्षा-ज्ञान एव मोक्ष कल्याणको की पूजा समस्त देवो के अधीश्वरो (इन्द्रो) द्वारा की गई है। उन चौबीसवें एव अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान भगवान् को शिर झुकाकर नमस्कार करने रूप मगलाचरण के अनन्तर वे ग्रन्थ रचना का सकल्प करते हैं और अपने इस रचे जाने वाले ग्रन्थ का नाम 'श्रुतावतार देते हैं। 'अहं वक्ष्ये' इस पद के द्वारा ग्रन्थ के प्रामाणिक होने की सूचना मिलती है क्योकि निर्ग्रन्थ दिगम्बर वीतराग सन्तो के वचन कभी अप्रामाणिक (असत्य) नही होते। 'सर्वनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरम्परं देवं' पदो द्वारा भगवान् वर्द्धमान स्वामी का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उन्हें शिर झुकाने का (नमस्कार करने का) औचित्य प्रतिपादित किया गया है।

यद्यप्यनाद्यनिधनं श्रुतं तथाऽप्यत्र तन्निभेन मया ।
कालाश्रयेण तस्योत्पत्तिविनाशौ प्रवक्ष्येते ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(यद्यपि) चूँकि (श्रुत) श्रुतज्ञान (भाव श्रुत) (अनाद्यनिधन) अनादि व अनिधन (आदि–अन्तरहित) है (तथापि) तो भी (अत्र) यहाँ (ग्रन्थ रचना के प्रसग मे) (तन्निभेन) उसी के समान (मया) मेरे (आचार्य इन्द्रनन्दि) द्वारा (कालाश्रयेण) काल के आश्रय से (समय की अपेक्षा से) (तस्य) उस श्रुत की, (उत्पत्ति विनाशौ) उत्पत्ति और विनाश (उत्पन्न होना और विनष्ट होना) (प्रवक्ष्येते) यहाँ कहे जायेंगे (कहे जाते हैं) ।

अर्थ—यद्यपि भावश्रुत एव द्रव्यश्रुत इनमे भाव की अपेक्षा श्रुत अनादि अनिधन है (न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी विनष्ट होगा) पर द्रव्यश्रुत—शास्त्र परम्परा कालाश्रित है—वह योग्य काल मे ज्ञानी, निर्ग्रन्थ, वीतरागी सन्तो द्वारा ज्ञान की प्रकर्षता में तथा बाह्य निर्विघ्नताओ मे शास्त्र रचना के रूप मे उत्पन्न भी होता है और ज्ञान की अप्रकर्षता तथा बाह्य विघ्न बाधाओ के रहते हुए विनाश को भी प्राप्त होता रहता है । उसी के समान आत्मदृष्टि से न जन्म लेने वाले, न मरने वाले किन्तुशरीर दृष्टिसे जन्म और मरण करनेवाले मेरे द्वारा उस श्रुत—द्रव्यश्रुत रूप शास्त्र-परम्परा की उत्पत्ति और विनाश यहाँ कहे जायेंगे अर्थात् कहे जाते हैं ।

भरतेऽस्मिन्नवसर्पिण्युत्सर्पिण्याह्वयौ प्रवर्त्तेते ।
कालौ सदाऽपि जीवोत्सेधायुर्ह्रासवृद्धिकरौ ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(अस्मिन्) इस (भरते) भरत क्षेत्र मे (जीवोत्सेधायुर्ह्रासवृद्धिकरौ) जीवो की ऊँचाई, आयु आदि मे ह्रास तथा वृद्धि करने वाले (अवसर्पिण्युत्सर्पिण्याह्वयौ) अवसर्पिणी तथा

उत्सर्पिणी नाम के (कालौ) दो काल (सदा) नित्य ही (प्रवर्तेते) प्रवर्तित होते हैं।

अर्थ—जम्बू द्वीप के छह क्षेत्रो मे ध्रुव दक्षिण मे भरत और ध्रुव उत्तर मे ऐरावत क्षेत्र हैं। इन दोनो क्षेत्रोमें कालचक्र का प्रवर्तन होता है। प्रथमत काल चन्द्र दो रूपो—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के रूप मे प्रवर्तित होते हैं। इनमे अवसर्पिणी का तात्पर्य ह्रास अर्थात् नीचे की ओर जानेवाला तथा उत्सर्पिणी का अर्थ उत्कर्ष—ऊपर को ओर जानेवाला है। अवसर्पिणी मे जीवो की ऊँचाई, आयु, बल, बुद्धि, मति, सुख सम्पदा विचार आदि ह्रासको प्राप्त होते हैं, इसके विपरीत उत्सर्पिणीमें इन सब वस्तुओ मे वृद्धि होती है।

जैसे सर्प फन की ओर से पूंछ तक मोटाई मे घटता जाता है। वैसे ही अवसर्पिणी मे क्रमश सभी चीजो उत्तम वस्तुओ मे ह्रास या घटती होती जाती है जबकि पूंछ की ओर से फन तक सर्प जैसे मोटा होता जाता है, वैसे ही उत्सर्पिणी मे सभी उत्तम वस्तुएँ वृद्धिगत होती जाती हैं।

एकैकस्य पृथग्दशकोटीकोटयः प्रमाणमुद्दिष्टम्।
वार्ध्युपमानावेतौ समाश्रितौ भवति कल्प इति॥ ४॥

अन्वयार्थ—(पृथक्) अलग-अलग (ऐकैकस्य) एक-एक का (अवसर्पिणी एव उत्सर्पिणी का (दश कोटी कोट्य)—दश कोडा कोडी (एक करोड × एक करोड = एक कोडा-कोडी × दश = दश कोडा कोड़ी) (वार्ध्युपमानौ) सागर प्रमाण (एतौ) ये दोनो अवसर्पिणी उत्सर्पिणी (समाश्रितौ) (सागर प्रमाण होकर) (कल्प इति) कल्प इस नामवाला (भवति) होता है।

अर्थ—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अलग-अलग दश-दश कोडा-कोडी सागर प्रमाण हैं और दोनो मिलकर बीस कोडा कोडी सागर प्रमाण एक 'कल्प' काल कहलाता है।

(अवसर्पिणी दश कोडा कोडी सागर प्रमाण है उत्सर्पिणी भी दश कोडा कोडी प्रमाण है दोनो मिलकर बीस कोडा कोडी सागर काल को एक कल्प काल कहते हैं)

(असख्यात कल्पो का एक सागर होता है।)

तत्रावसर्पिणीयं प्रवर्तमाना भवेत्समाऽस्याश्च ।
कालविभागाः प्रोक्ताः षडेव कालप्रभेदज्ञैः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(काल प्रभेदज्ञै) काल के भेदो को जानने वाले (वीतराग भगवन्तो द्वारा) (षट्) छह (एव) ही (काल विभागा) काल के विभाग (प्रोक्ता) कहे गये हैं। (तत्र) उन काल विभागो मे (इयं) यह वर्तमान (अवसर्पिणी प्रवर्तमाना) अवसर्पिणी जिसमे उत्सेध—आयु आदि की घटती है वह प्रवर्तमान है (चल रहा है), (आस्या) इस अवसर्पिणी के समान उत्सर्पिणी के भी छह काल भेद हैं।

अर्थ—काल के भेदो के जानने वाले जिनेन्द्र सर्वज्ञ भगवन्तो ने उन अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रत्येक के छह-छह काल विभाग बताये हैं। अवसर्पिणी के छह और उत्सर्पिणी के भी छह।

सुषमसुषमाह्वयाद्या सुषमाऽन्या सुषमदुःषमेत्यपरा ।
दुष्षमसुषमान्या दुष्षमाऽतिपूर्वा पराऽस्यैव ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(सुषमसुषमाह्वयाद्या) सुषमा सुषमा नामका आदिम (प्रथम) काल है (सुषमान्या) सुषमा दूसरा काल है सुषमा-दुषमा) उससे बाद का तीसरा काल है। (दुषम सुषमान्या) दुषमा सुषमा उससे आगे का चौथा काल है। (दुष्षमाऽतिपूर्वा) दुषमा, अन्तिम काल मे, पूर्व का (पञ्चम) काल है। (परास्यैव) इसी अवसर्पिणी का अन्तिम (छठा) काल दुषमा-दुषमा है।

अर्थ—अवसर्पिणी का पहला काल सुषमा-सुषमा है। दूसरा काल सुषमा, तीसरा सुषमा-दुषमा चौथा दुषमा-सुषमा पाँचवाँ—दुषमा तथा छठा काल दुषमा-दुषमा है।

उत्सर्पिणी के क्रमश (१) दुषमा दुषमा (२) दुषमा (३) दुषमा-सुषमा (४) सुषमा-दुषमा (५) सुषमा तथा (६) सुषमा-सुषमा हैं।

तत्र क्रमाच्चतस्रस्तिस्रो द्वे सागरोपमाख्यानाम्।
कोटीकोटयस्तिसृणामाद्यानां भवति परिमाणम्॥ ७॥

अन्वयार्थ—(तत्र) इन छह कालो में, (आद्याना तिसृणा) आदि के तीन कालो को (सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा की (क्रमात्) क्रम से (कोटी कोटय) कोडा कोडी (चतस्र) चार (तिस्र) तीन तथा (द्वे सागरोपमाख्यानाम्) दो सागर प्रमाण (परिमाणं) स्थिति (भवति) होती है।

अर्थ—उन छह कालो मे से आदि के तीन कालो क्रमश—सुषमा-सुषमा, सुषमा तथा सुषमा दुषमा की चार कोडा कोडी तीन कोडा कोडी तथा दो कोडा कोडी स्थिति होती है—

सुषमा सुषमा—चार कोडा कोडी सागर,
सुषमा—तीन कोडा कोडी सागर,
सुषमा दुषमा—दो कोडा कोडी सागर प्रमाण स्थिति वाले हैं।

कोटीकोटीवर्षसहस्रैरेतैश्चतुर्दशभिरूना।
त्रिगुणैरम्भोधीनां परिमाण भवति तुर्यायाः॥ ८॥

अन्वयार्थ—(तुर्याया) चौथी अवसर्पिणी दुषमा सुषमा का (समय) (त्रिगुणैः) तीन गुणित (चतुर्दशभि) चौदह (१४×३=४२) (वर्ष सहस्रै) वर्ष हजार (ऊना) कम (अम्भोधीनां) सागरो के कोटी कोटय—कोडा कोडी (अर्थात् ब्यालीस सहस्र वर्ष

न्यून कोडा कोडी सागर (परिमाण) (भवति) परिमाण होता है।

अर्थ--अवसर्पिणी के चतुर्थ दुषमा-सुषमा काल की स्थिति ब्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोडा कोडी सागर प्रमाण होती है।

एकोत्तरविंशत्या वर्षसहस्रैर्मिता समोपान्त्या।
तावद्भिरेव कलिता वर्षसहस्रैः समा षष्ठी ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ--(उपान्त्या समा) उपान्त्य-अन्तिम से पहले की अवसर्पिणी (अर्थात् अवसर्पिणी का पञ्चम काल) (वर्ष सहस्रै) हजार वर्षों के (एकोत्तर विंशत्या) इक्कीस के (मिता) परिमित है। (तावद्भिरेव) उतने ही (वर्षसहस्रै) हजार वर्षो से (षष्ठी समा) अवसर्पिणी का षष्ठ काल भी (कलिता) बना हुआ है--अर्थात् षष्ठ काल भी उतने ही वर्षों से बना है।

अर्थ--अन्तिम से पहला उपान्त्य कहलाता है। षष्ठ दुषमा-दुषमा काल अवसर्पिणी का अन्तिम काल है उससे पहले का पाँचवाँ दुषमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है तथा छठा दुषमा-दुषमा काल भी इक्कीस हजार वर्ष का है।

धनुषा षट्चत्वारि द्वे च सहस्रे शतानि पञ्चैव।
हस्ताः सप्तारत्निः षट्कालिकमानतोत्सेधः ॥१०॥

अन्वयार्थ--(धनुषा) धनुषो के (षट् चत्वारि च द्वे सहस्रे) छह, चार तथा दो हजार (च पञ्च शतानि) तथा पाँच सौ (सप्त हस्ता) सात हाथ (अरन्ति) प्राय एक हाथ (षट्कालिक मानता) छह कालो का, मानता-प्रमाण (उत्सेध) ऊँचाई है।

अर्थ--सुषमा-सुषमादि छह कालो के प्रारम्भ मे क्रमशः छह हजार धनुष, चार हजार धनुष, दो हजार धनुष, पाँच सौ धनुष,

सात हाथ एवं अरन्ति (प्राय एक हाथ) शरीर की ऊँचाई का प्रमाण है।

१—सुषमा सुषमा काल के प्रारम्भ मे छ हजार धनुष प्रमाण मनुष्य शरीर की ऊँचाई होती है। (तीन कोश प्रमाण)

२—सुषमा नामक अवसर्पिणी के दूसरे काल के प्रारम्भ मे चार हजार धनुष प्रमाण की ऊँचाई होती है। अर्थात् दो कोश।

३—सुषमा-दुषमा नामक तीसरे अवमर्पिणी काल मे दो हजार धनुष अर्थात् एक कोश प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

४—दूषमा-सुषमा नामक पाँचवे काल मे पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

५—दुषमा नामक पञ्चम काल के प्रारम्भ मे सात हाथ प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

६—अनि दुषमा काल के प्रारम्भ मे एक अरत्नि प्रमाण अर्थात् एक हाथ शरीर को ऊँचाई होती है।

पल्यानि त्रीणि द्वे तथैकक वर्षपूर्वकोटी च।
विंशच्छतं च विंशतिरब्दानां तन्नृणामायुः ॥११॥

अन्वयार्थ—(तन्नृणा) उन अवसर्पिणी के छह कालो के लोगो की (आयु) शरीर स्थिति (त्रीणि पल्यानि) तीन पल्य (द्वे) दो पल्य (तथा एकक) तथा एक पल्य एव (वर्ष पूर्व कोटि) एक पूर्व कोटि वर्ष (च) और (अब्दाना) वर्षों के (विंशच्छत) एक सौ बीस वर्ष (विंशति) और बीस वर्ष होती है।

अर्थ—अवसर्पिणी के उन छह कालो के मनुष्यो की आयु क्रमश सुषमा-सुषमा काल के मनुष्यो की तीन पल्य, सुषमा काल के मनुष्यो की दो पल्य, सुषमा दुषमा नामक तीसरे काल के मनुष्यो की आयु एक पल्य, सुषमा-सुषमा नाम के चतुर्थ काल के मनुष्यो की आयु

एक कोटि पूर्व वर्ष, दुषमा नामक पञ्चम काल के मनुष्यो की आयु एक सौ बीस वर्ष तथा अति दुषमा नामक छठे काल के मनुष्यो की आयु मात्र बीस वर्ष होती है।

तत्राद्ययोर्व्यतीते समये सम्पूर्णयोस्तृतीयायाः।
पल्योपमाष्टमांशन्यूनायाः कुलधरा ये स्युः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(तत्र) उस अवसर्पिणी काल मे (सम्पूर्णयो) पूरे (आद्ययो) आदि के दो (सुषमा-सुषमा व सुषमा) कालो के (व्यतीते) निकल जाने पर (तृतीयाया) तीसरे के (पल्योपमाष्ट-माशन्यूनाया) पल्य के अष्टमाशभागकम (समये) समय रह जाने पर (ये) जो (कुलधराः) कुलकर (स्यु) हुए।

अर्थ—उस अवसर्पिणी काल मे आदि (प्रारम्भ) के दो कालो के पूर्ण व्यतीत हो जाने पर और तृतीय काल मे पल्य के अष्टम अश भाग-प्रमाण समय रह जाने पर जो कुलकर हुए वे इस प्रकार हैं—

तेषामाद्यो नाम्ना प्रतिश्रुतिः सन्मतिर्द्वितीयः स्यात्।
क्षेमङ्करस्तृतीयः क्षेमन्धरसञ्ज्ञितस्तुर्यः ॥१३॥
सीमङ्करस्तथाऽन्यः सीमन्धरसाह्वयो विमलवाहः।
चक्षुष्मांश्च यशस्वानभिचन्द्रश्चन्द्राभनामा च ॥१४॥
मरुदेवनामधेयः प्रसेनजिन्नाभिराजनामाऽन्त्यः।
हामाधिक्कारानन्नुशासति निजतेजसः स्खलितान् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(तेषां) उन कुलकरो का (आद्य) प्रथम (नाम्ना) नाम से (प्रतिश्रुति) प्रतिश्रुति (द्वितीयः) दूसरा (सन्मति स्यात्) दूसरा सन्मति है (तृतीय) तीसरा (क्षेमङ्कर) क्षेमकर (तुर्य)

चतुर्थं (क्षेमन्धर सज्ञिन.) क्षेमन्धर नाम वाला (तथाऽन्य) इसके पश्चात् (अन्य) दूसरा सीमकर (सीमन्धर साह्वयो विमलवाह:) सीमन्धर नाम सहित विमलवाह च (चक्षुष्माश्च यशस्वान्‌भिचन्द्र-नामा च) चक्षुष्मान् यशस्वान अभिचन्द्र तथा चन्द्राभ नाम वाला (मरुदेव नामधेय.) मरुदेव नामक (प्रसेनजिन्नाभिराज-नामान्त्य) प्रसेनजित् तथा अन्तिम नाभिराज (निजतेजस.) अपनी तेजस्विता से (स्खलितान) मर्यादाओ से च्युत होने वाले लोगो को (हामाधिक्कारात्) हा ! (हाय) मा ! (मतकरोऽधिक्कारात्) (त्वा धिक्) इस वचन से (अनुशासति) अनुशासित करते थे ।

अर्थ—[वे कुलकर मे थे—(१) प्रतिश्रुति (२) सन्मति (३) क्षेमंकर (४) क्षेमन्धर (५) सीमकर (६) सीमन्धर (७) विमलवाह (न) (८) चक्षुष्मान (९) यशस्वान् (१०) अभिचन्द्र (११) चन्द्राभ (१२) मरुदेव (१३) प्रसेनजित् एव (१४) नाभिराज ।]

[ये सब अपनी तेजस्विता से, मर्यादाओ का भग करने वालो को हा ! मा !! तथा धिक् !!!—इन तीन वचन दण्डो से ही अनुशासित करते थे ।]

हाकारं पञ्च ततो हामाकारं च पञ्च पञ्चान्ये ।
हामाधिक्कारान्कथयन्ति तनोर्दण्डनं भरतः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(हाकार पञ्च) हा ! शब्द को पाँच पहले के कुलकर (हामाकारं च अन्ये पञ्च) हा ! तथा (मा) (मत करो) शब्द को दूसरे पाँच तथा (अन्ये) (हामाधिक्कारान्) हा, मत करो तथा धिक्कार—इन शब्दो को बचे हुए अन्य कुलकर (कथयन्ति) (कह कर दण्ड देते थे) । (भरत) भरत जो कि १४ कुलकरो के

अतिरिक्त १५ वें कुलकर थे वे हा मा धिक के अतिरिक्त (तनो-दण्डन) शरीर दण्डन भी करते थे ।

अर्थ—प्रतिश्रुति से सीमकर पर्यन्त पाँच कुलकर हा ! शब्द से दण्ड देते थे । सीमन्धर से अभिचन्द्र तक ५ कुलकर 'हा !' तथा 'मा' शब्दो से दण्डित करते थे । चन्द्राभ से लेकर नाभिराज तक हा ! मा, तथा धिक् तीनो शब्दो से दण्डित करते थे तथा भरत जो कि अन्तिम कुलकर नाभिराज के पुत्र थे वे इन तीनो शब्द दण्डो के अतिरिक्त शरीर दण्ड से भी अनुशासन करते थे । इस प्रकार कुल-करो के समय जन हृदय क्रमश दूषित हो रहे थे ।

रवितारालोकेभ्यस्त्रयो नृणामपनयन्ति भयमाद्याः ।
दीपविचोदनमर्यादाऽऽवृतिवाहादिरोहमतः ॥१७॥
कथयन्ति तु चत्वारः सुतेक्षणाद्भीतिमपहरत्यन्यः ।
नामकृतिं शशधरमभि शिशुकेलिं प्रकुरुतेऽन्यः ॥१८॥
जीवति सुतैः सहान्यो जलतरणं गर्भमलविशुद्धिं च ।
नालनिकर्तनमपि च त्रयोऽपि परे व्यपदिशन्ति नृणाम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(आद्या भय) आदि के तीन रवि तारालोकेभ्य सूर्य चन्द्र और ताराओ के दर्शन से उत्पन्न (भय) डर (नृणा) उस समय के मनुष्यो का (अपनयन्ति) दूर करते हैं । (अत) इससे आगे के (चत्वार) चार कुलकर (दीप विचोदन मर्यादा वृत्ति वाहादिरोह कथयन्ति) रात्रि मे प्रकाश हेतु दीपक जलाना, कल्प-कल्पवृक्षो की सीमा निर्धारित करना, बाड लगाना, सवारी करना आदि बताते हैं । (अन्य) अन्य कुलकर (सुतेक्षणात्) पुत्र के देखने से (भीतिं) भय को (अपहरति) दूर करता है । (शश-धरमभि) अभिचन्द्र 'कुलकर' (नामाकृतिं) पुत्रो का नाम लेकर

बुला बुलाकर प्रसन्न होना, (अन्य) उससे और दूसरा कुलकर (चन्द्राभ नामक:) पुत्रो से क्रीडा करके प्रसन्न होना। (सुतै.) पुत्रों के साथ जीवित होना—पारिवारिक जीवन जीना, (जलतरण) जल मे नौकादि द्वारा, उस पार होना, (गर्भ मल विशुद्धि) गर्भ के जरा आदि मल की विशुद्धि को (नालनिकर्तनम् अपि) नाल काटने आदि को परे—अन्तिम (त्रयोऽपि) तीन (नृणा) मनुष्यो को (व्यपदिशन्ति) शिक्षा देते हैं, बताते है।

अर्थ—चौदह कुलकरो ने भोगभूमि की समाप्ति और कर्म भूमि के प्रारम्भ मे होने वाले परिवर्तनो से अनभिज्ञ अतएव भयभीत मनुष्यो को निम्न प्रकार बताकर उनका भय निवारण कर उन्हे सुव्यवस्थित किया—

१—प्रतिश्रुति कुलकर ने सूर्य चन्द्रमा के उदय अस्त आदि के विषय मे बताया।

२—सन्मति कुलकर ने सूर्य, चन्द्रमा तारो का गमन आदि बताया।

३—क्षेमङ्कर कुलकर ने उस समय पशुओ मे स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले क्रूरता आदि को बताकर उनसे बचने का उपाय बताया।

४—क्षेमन्धर कुलकर ने उन क्रूर पशुओ को मानव समाज से अलग कर उनकी रक्षा की।

५—सीमकर कुलकर ने कल्पवृक्षो के कम होने पर होने वाले सघर्ष से बचने के लिये इतने वृक्षो का उपयोग ये करे आदि सीमा कर दी।

६—सीमन्धर कुलकर ने एक दूसरे की सीमाओ का उल्लघन न करें यह बताया।

७—विमलवाह (न) ने हाथो घोडा आदि पशुओ पर सवारी करना सिखाया।

८—चक्षुष्मान कुलकर ने सन्तान को देखकर डरने से छुडाया।

९—यशस्वान ने—पुत्र मुख देखकर प्रसन्न होने का उपदेश दिया।

१०—अभिचन्द्र ने—बालको की क्रीडा देखकर उससे प्रसन्न होना सिखाया, सन्तान को नाम लेकर बुलाना आदि सिखाया।

११—चन्द्रमा ने—सन्तान के जीवित रहने पर उसके साथ रहकर पारिवारिक जीवन सिखाया।

१२—मरुदेव ने—आजीविका का चिन्तन, नौका आदि द्वारा जल तिरने की विद्या सिखाई। आरोहण-सोपान लगा कर चढने की विद्या सिखाई।

१३—प्रसेनजित् ने—जन्म लेते शिशुओ के शरीर पर होने वाले जेर रूपी मल के शोधन की बात बताई। अथवा शत्रुओ से जीतना सिखाया।

१४—नाभि कुलकर ने (तीर्थंकर ऋषभदेव के पिता ने) शिशुओ को नाभि के नाल को काटने की विधि बताई। बादलो के आकाश मे घुमडने पर भय आश्चर्य न करने का उपदेश दिया।

अथ नाभिराजनृपतेर्मरुदेव्यां व्यजनि नन्दनो वृषभः।
तीर्थंकृतामाद्योऽसौ प्रवर्त्य भरते भृशं तीर्थम् ॥२०॥
निर्वाणमवाप ततः पञ्चाशल्लक्षकोटिमितिवार्द्धिः।
यावदविच्छिन्नतया समागतं तत् श्रुतं सकलम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(अथ) तदनन्तर (नाभिराजनृपते) राजा नाभिराज से (मरुदेव्या) मरुदेवो मे (वृषभ. नन्दन.) वृषभ नामक आनन्द लेने वाला पुत्र (व्यजनि) उत्पन्न हुआ। (असौ) वह

(तीर्थंकृता) तीर्थङ्करो मे (आद्य) पहला (था) (उसने) (भरते) भरत क्षेत्र मे (भृशं) अत्यधिकतया (तीर्थं) धर्म तीर्थ को (प्रवर्त्य) चलाकर (निर्वाणं) मुक्ति को (आप) प्राप्त किया (तत) उस समय से (पञ्चाशल्लक्षकोटिमितवार्द्धि) पचास लाख करोड सागर (यावत्) तक (तत्) वह (सकल) सम्पूर्ण (श्रुत) द्वादशाङ्ग वाणी रूप श्रुत-आगम (अविच्छिन्नतया) अविरल रूप से (समागत) चलता रहा ।

अर्थ—तदनन्तर (अन्तिम कुलकर राजा नाभिराज और मरु-देवी नाम की रानी से आनन्द देने वाला ऋषभ नामक पुत्र हुआ। वह तीर्थंकरो मे पहला था उसने इस भरत क्षेत्र मे अत्यधिक रूप में समीचीन धर्म तीर्थ का प्रवर्तन कर निर्वाण को प्राप्त किया। उसके बाद पचास लाख करोड सागर पर्यंत वह श्रु॒त (तीर्थंकर की वाणी से उद्भूत श्रुतज्ञान) अविच्छिन्न रूप से चलता रहा ।

जातस्ततोऽजितजिनः शिष्येभ्यः सोऽपि सम्यगुपदिश्य ।
तत् श्रुतमखिलं प्रापन्निर्वाणमनुत्तरं तद्वत् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तत) तदनन्तर (अजितजिनः) द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ जिनेन्द्र (जात) उत्पन्न हुए। (सोऽपि) वह भी (शिष्येभ्यः) अपने शिष्यो के लिए (तत्) वह (आदि जिनेन्द्र से परम्परा रूप में चला आया हुआ) (सकलं) सम्पूर्ण (श्रुत) आगम रूप श्रुतज्ञान (सम्यग्) भलीप्र कार (उपदिश्य) उपदेश देकर [बताकर] (तद्वत्) उसी प्रकार [आदिनाथ भगवान् की तरह, (अनुत्तरं) उपमा रहित-श्रेष्ठ (निर्वाणं) सिद्धिको (प्रापत्) प्राप्त हुए ।

अर्थ—तदन्तर आदिनाथ श्री वृषभ जिनेन्द्र के पश्चात् अजित नाथ द्वितीय तीर्थंकर उत्पन्न हुए उन्होने भी जैसा वृषभ जिनेन्द्र ने तत्त्वोपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण आगम-श्रुतरूप—तत्त्वोपदेश अपने शिष्यो को सम्यक् प्रकार देकर उन्ही वृषभ जिनेन्द्र की भाँति अनुपम निर्वाण की प्राप्ति की।

एवमजितादिचन्द्रप्रभान्ततीर्थेशिनामतिक्रान्ता ।
सागरकोटीनां त्रिशक्रमाद्दशभिरथ नवभिः ॥२३॥
लक्षैस्तथा नवत्या नवभिश्च सहस्रकैः शतैर्नवभिः ।
शम्भवमुख्यात् श्रुतमापन्नमत्या च पुष्पदन्तान्तात् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार (अजितादिचन्द्रप्रभान्ततीर्थेशिना) अजितनाथ तीर्थंकर आदि मे हैं जिनके ऐसे चद्रप्रभ आठवें तीर्थंकर पर्यन्त तीर्थंकरो के (सागर कोटीना त्रिशक्रमात् दशभि अथ नवभिः लक्षै अतिक्रान्ते) द्वितीय तीर्थङ्कर की परम्परा मे तीस लाख करोड, तृतीय सभवनाथ के परम्परा मे दश लाख करोड सागर, अभिनन्दननाथ की परम्परा मे नौ लाख करोड व्यतीत होने पर, (नवत्या) (नवभि) (सहस्रकै) नवभि शतै (अतिक्रान्ते) सुमति नाथ की परम्परा मे नब्बे हजार करोड, पद्मप्रभ भगवान् की परम्परा मे नौ हजार करोड, सुपार्श्वनाथ भगवान् की परम्परा मे नौ सौ करोड सागर समय बीतने पर चन्द्रप्रभ हुए। चन्द्रप्रभ भगवान् की परम्परा मे नब्बे करोड सागर व्यतीत होने पर पुष्पदन्त ९वे तीर्थङ्कर हुए। (च) और (श्रुतमापन्नमत्या) आगम से प्राप्त ज्ञान से जाना जाता है कि—(शम्भवमुख्यात् पुष्पदन्तात्) सभवनाथ भगवान् से लेकर पुष्पदन्त तक (श्रुतपरम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रही)।

अर्थ—इस प्रकार अजितनाथ भगवान् द्वितीय तीर्थंकर से चन्द्र

प्रभ भगवान (आठवें तीर्थंकर) तक तीस लाख करोड सागर, दश लाख करोड सागर, नौ लाख करोड सागर, नव्वे हजार करोड सागर, नौ हजार करोड सागर, नौ सौ करोड सागर, नव्वे करोड सागर, समय व्यतीत हो जाने पर पुष्पदन्त भगवान नौवे तीर्थंकर तक यह श्रुत निरन्तर चला।

प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ऋषभदेव के पश्चात् पचास लाख करोड सागर व्यतीत होने पर द्वितीय अजितनाथ तीर्थंकर हुए।

अजित नाथ तीर्थंकर के पश्चात् तीस लाख करोड समय व्यतीत होने पर सम्भवनाथ हुए।

उनसे दश लाख करोड सागर समय बीतने पर अभिनन्दन नाथ हुए।

उनसे नौ लाख करोड सागर समय बीतने पर सुमतिनाथ पांचवें तीर्थंकर हुए।

उनसे नव्वे हजार करोड सागर समय बीतने पर पद्मप्रभ छठे तीर्थंकर हुए।

उनसे नौ हजार करोड सागर समय बीतने पर सातवें सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर हुए।

सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर से नौ सौ करोड़ सागर समय बीतने पर चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थंकर हुए।

चन्द्रप्रभ से नव्वे करोड सागर समय बीतने पर पुष्पदन्त नौवें तीर्थंकर हुए।

सम्भवनाथ तीर्थंकर से पुष्पदन्त नवम तीर्थंकर तक यह श्रुत-ज्ञान अनवरत रहा।

अथ पुष्पदन्ततीर्थे नववारिधिकोटिगणनया कलिते ।
पल्योपमतुर्यांशे शेषे तत् श्रुतमवाप विच्छेदम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(अथ) तदनन्तर (नववारिधि कोटिगणनया कलिते) नौ करोड सागर प्रमाण गणना से युक्त, पुष्पदन्त भगवान् के (तीर्थे) तीर्थ मे (पल्योपम तुर्यांशे शेषे) पल्योपम के चतुर्थांश के शेष रहने पर (तत्) वह (श्रुत) भगवान् की वाणी रूप श्रुतज्ञान (विच्छेद) समाप्ति को (अवाय) प्राप्त हो गया ।

अर्थ—तत्पश्चात् नौ करोड सागर प्रमाण गणना से युक्त पुष्प-दन्त भगवान् के तीर्थ मे पल्योपम के चतुर्थ भाग शेष रहने पर वह भगवान् की दिव्यध्वनि द्वारा वताया गया श्रुतज्ञान विच्छेद को प्राप्त हो गया ।

पल्यचतुर्भागमिते काले तीर्थे ततः समुत्पन्नः ।
शीतलजिनः स पुनराविष्कृतवाँस्तत् श्रुतविशेषम् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(पल्यचतुर्भागमिते) पल्य के चौथाई भाग प्रमाण (काले) काल मे (तीर्थे) तीर्थ के विच्छेद होने पर (तत) तदनन्तर (पुन) फिर (शीतलजिनः) शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर (समुत्पन्न) उत्पन्न हुए (स.) उन्होने (तत्) वह पूर्व तीर्थंकरो द्वारा प्रणीत (श्रुत विशेषम्) श्रुतज्ञान (पुन) फिर से (आविष्कृतवान्) प्रकट किया ।

अर्थ—पल्य के चतुर्थ भाग परिमित काल तक तीर्थ विच्छेद रहने पर श्री शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर हुए उन्होने उस श्रुत को (जिनेन्द्र वाणी मे प्रकट श्रुतागम रूप धर्म को) फिर से अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया ।

शीतलतीर्थे सागरशतेन षट्षष्ठिलक्षमितवर्षैः ।
षड्विंशत्या वर्षसहस्रैन्यूनैकवार्द्धिकोटिमिते ॥२७॥
पल्यार्धमात्रकाले शेषे तत्पुनरजन्यविच्छिन्नम् ।
मितवति गतवति काले ततोऽभवत्तीर्थकृच्छ्रेयान् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(शीतल तीर्थे) शीतलनाथ दशवे तीर्थंकर के तीर्थ के (सागर शतेन) सौ सागर (षट्षष्ठि लक्ष मितवर्षे) छ्यासठ लाख (षड्विंशत्या) छब्बीस (वर्ष सहस्रे) हजार वर्ष (न्यूनैक वार्धिककोटिमिते) कम एक करोड सागर परिमित अन्तराल मे पल्यार्ध मात्र काले (मितवति शेषे काले गतवति) पल्य के आधे प्रमाण शेष काल के बीतने पर (तत्) शीतलनाथ भगवान द्वारा उपदिष्ट तीर्थ (धर्म) अविच्छिन्न रहा (हाँ आधे पल्य की वह धर्म परम्परा टूट गयी) तब (श्रेयान् तीथकृत्) श्रेयास नाथ ११वें तीर्थंकर (अभवत्) हुए ।

अर्थ—शीतलनाथ दशवें तीर्थंकर के तीर्थ के जब सौ सागर छ्यासठ लाख, छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड सागर प्रमाण अन्तराल मे जब आधा पल्य तक धर्म परम्परा अविछिन्न रही तब श्री श्रेयासनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर उत्पन्न हुए। अर्थात् शीतलनाथ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म परम्परा सौ सागर छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड सागर तक अविच्छिन्न चली पर अन्त मे आधा पल्य तक टूटी रही अनन्तर ग्यारहवे श्रेयासनाथ तीर्थंकर हुए ।

श्रेयस्तीर्थमपि चतुष्पञ्चाशत्सागरोपमप्रमिते ।
पल्यत्रिचतुर्भागे शेषे तत्पुनरवापान्तम् ॥२९॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह (श्रेयस्तीर्थमपि) श्रेयासनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर द्वारा समुपदिष्ट तीर्थ (धर्म) (अपि) भी, (चतुपञ्चा-

शत्सागरोपम प्रमिते) चौवन सागर प्रमाण काल में (पल्यत्रिचतु-र्भागे) पल्य के ¾ भाग के शेष रहने पर (अन्तम्) समाप्ति को (अवाप) प्राप्त हो गया।

अर्थ—वह श्रेयासनाथ ग्यारहवें तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित श्रुत रूप तीर्थ (धर्म) चौवन सागर प्रमाण काल मे पल्य का ¾ भाग शेष रहने पर समाप्ति को प्राप्त हो गया।

पल्यत्रिचतुर्भाग प्रमिते काले गते ततो जातः।
श्रीवासुपूज्यभगवान् सोऽप्याविष्कृत्य तन्मुक्तः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(ततो) उसके बाद (पल्यत्रिचतुर्भागे प्रमिते काले गते) पल्य का ¾ भाग बीतने पर (श्रीवासुपूज्यभगवान्) श्री वासुपूज्य भगवान् (जात) हुए (स अपि) वे भी (आविष्कृत्य) धर्मश्रुत को प्रकट करके (मुक्त जात) मुक्त हुए।

अर्थ—ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयासनाथ के बाद पल्य का ¾ भाग व्यतीत हो जाने पर बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य हुए। इन्होने भी धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करके मोक्ष प्राप्त किया।

एवं वसुपूज्यात्मजविमलजिनानन्तधर्मतीर्थेषु।
त्रिंशत्नवकचतुष्कं त्रिपल्यपादोनितत्रिकैर्वार्धीनाम् ॥३१॥
प्रमितेषु पल्यपल्यत्रिपादपल्यार्धपल्यपल्यांशे।
शेषे शेषं तत् श्रुतमनुक्रमादाप विच्छेदम् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (वसुपूज्यात्मजविमल जिना-नन्त धर्म तीर्थेषु) वसुपूज्यात्मज (वासुपूज्य भगवान) विमलनाथ, अनतनाथ, धर्मनाथ के तीर्थो मे (वार्धीना) सागरो के (क्रमशः) (त्रिपल्यपादोनिमितित्रिके) पल्य के तीन भाग बीत जाने से युक्त (त्रिंशत्, नवक, चतुष्क) तीस, नव तथा चार (प्रमितेषु) प्रमाण होने पर (पल्य-पल्य त्रिपाद पल्यात्, अर्ध पल्य पल्यांशे) पल्य के

तीन भाग प्रमाण व्यतीत हो जाने पर चतुर्थांश के लिये (शेष) शेष (तत् श्रुतम्) वह श्रुतरूप धर्म (अनुक्रमात्) क्रम से (विच्छेद आदाप) विच्छेद को प्राप्त हो गया।

अर्थ—भगवान वासुपूज्य जो कि नृपति वसुपूज्य के आत्मज थे के तीर्थ मे तीस सागर समय व्यतीत होने पर पल्य के अन्तिम भाग मे धर्म का विच्छेद हो गया।

विमलनाथ भगवान के तीर्थ मे नव सागर पौन पल्य समय व्यतीत होने पर पल्य के चौथे भाग तक के लिये धर्म का विच्छद हो गया।

अनन्त नाथ भगवान के तीर्थ मे चार सागर के अन्तिम पल्य के आधे भाग मे धर्म का विच्छेद हो गया।

धर्मनाथ भगवान के बाद पौन पल्य कम से कम तीन सागर व्यतीत हो जाने पर पल्य के चतुर्थांश तक को धर्म का विच्छेद हो गया।

अथ धर्मतीर्थसन्तानान्तरकालस्य सत्यपर्यन्ते।
उत्पद्य शान्तिनाथस्ततप्रकटीकृत्य मुक्तिमगात् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (धर्म तीर्थ सन्तानान्तर कालस्य) धर्मनाथ तीर्थंकर की परम्परा के अनन्तर उस तीर्थ के पौन पल्य कम तीन सागर समय व्यतीत होने पर (शान्तिनाथ) शान्तिनाथ भगवान (उत्पद्य) उत्पन्न होकर (तत्) उस धर्म श्रुत को (प्रकटीकृत्य) प्रकट करके (मुक्ति) मोक्ष को (अगात्) चले गये।

अर्थ—इसके अनन्तर धर्मनाथ पन्द्रहवे तीर्थंकर की धर्म परम्परा के समाप्त होने पर श्री शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर ने जन्म लेकर उस धर्म को प्रकट करके मुक्ति को प्राप्त किया।

शान्त्यादिपाश्र्वपश्चिमतीर्थंकराणां च तीर्थसन्ताने ।
पल्यार्धवर्षकोटीसहस्रोनितपल्यपादाभ्याम् ॥३४॥
कोटिसहस्रेण चतुःपञ्चाशद्गुणितसहस्रेण ।
षड्भिश्च शतसहस्रैर्लक्षाभि पञ्चभिश्च तथा ॥३५॥
त्र्यधिकाशीतिसहस्रैर्युताधाष्टमशतैश्च पञ्चाशत् ।
सहितशतद्वितयेन च वर्षाणां सम्मिते क्रमशः ॥३६॥
चतुरमलबोधसम्पत्प्रगल्भमतियतिजनैरविच्छिन्नैः ।
न क्वचिदप्यवच्छेदमापत्तत् श्रुतमुदात्तार्थम् ॥३७॥

अन्वयार्थ—(शान्त्यादि पार्श्व पश्चिम तीर्थंकराणा) शान्तिनाथ है आदि मे जिनके तथा पार्श्वनाथ के पश्चिम श्री वर्धमान् तीर्थंकरो के (तीर्थ मन्ताने) तीर्थ परम्परा मे (पल्यार्ध वर्ष कोटी सहस्रोनिन पल्यपादाभ्याम्) पल्य के आधा बीतने पर, एक हजार करोड वर्ष कम पल्य के चतुर्थांश बीतने पर, (कोटि सहस्रेण) एक हजार करोड बीनने पर (चतु पञ्चाशत् गुणित शत सहस्रेण) चौवन गुणित एक लाख अर्थात् चौवन लाख वर्ष व्यतीत होने पर (षडभिश्च शतसहस्रै) छह लाख वर्ष व्यतीत होने पर (लक्षाभि पञ्चभि च) पाँच लाख वर्ष व्यतीत होने पर (त्र्यधिकाशीति सहस्रैर्युताधाष्टमशतैश्च त्र्यपञ्चाशत्) सात सौ पचास अधिक तेरासी हजार वर्ष व्यतीत होने पर तथा (सहित द्वितयेन) दो सौ वर्षो के क्रमश (सम्मिते) व्यतीत होने पर (उदात्तार्थं) उदात्त अर्थ-वाला वह श्रुत (धर्म श्रुत) (चतुरमल-बोध-सम्पत-प्रगल्भ-मति-यतिजनै) चार निर्मल ज्ञानो की सम्पदा से प्रगल्भ (प्रकृष्ट) बुद्धि वाले यति जनो से (अविच्छिन्ने) अत्रुटित (क्वचिदपि) कही भी (अवच्छेद) भंगता को (न आदत्) प्राप्त नही हुआ।

अर्थ—भगवान् श्री शान्तिनाथ की धर्म परम्परा के आधा पल्य बीतने पर कुन्थुनाथ भगवान हुए।

भगवान कुन्थुनाथ की धर्म परम्परा के एक हजार करोड वर्ष कम पल्य का चौथाई भाग व्यतीत होने पर अरहनाथ १८वें तीर्थंकर हुए।

अरनाथ तीर्थंकर की धर्म परम्परा के जब एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये तब मल्लिनाथ उन्नीसवे तीर्थंकर हुए।

मल्लिनाथ भगवान की तीर्थ परम्परा के चौवन लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान मुनि सुव्रतनाथ बीसवें तीर्थंकर हुए।

भगवान मुनि सुव्रतनाथ के धर्मतीर्थ के छह लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान श्री नमिनाथ इक्कीसवें तीर्थंकर हुए।

भगवान नमिनाथ के तीर्थ के पाँच लाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान नेमिनाथ हुए।

नेमिनाथ के तीर्थ के तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष व्यतीत होने पर भगवान पार्श्वनाथ हुए।

भगवान् पार्श्वनाथ के दो सौ पचास वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए।

चार निर्मल ज्ञानो की सम्पदा से प्रकृष्ट बुद्धि वाले परम्परा से अविच्छिन्न यति जनो द्वारा वह उदात्त अर्थ वाला श्रुत कही भी विच्छेद को प्राप्त नही हुआ।

अजिताद्यास्तीर्थंकरा वृषभादिजिनेन्द्रतीर्थकालस्य।
अन्तर्वर्त्यायुष्का जाता इत्यत्र विज्ञेयाः ॥३८॥

अन्वयार्थ—(वृषभादि जिनेन्द्र तीर्थकालस्य) वृषभ आदि जिनेन्द्रो के तीर्थ के समय के (अजिताद्यास्तीर्थंकराः) अजित आदि

अन्वयार्थ—(असौ सिद्धार्थ तनय) श्री वर्द्धमान (कुमार एव) कुमार काल मे ही (त्रिंशद्वर्षेषु) तीस वर्षों के (विगतेषु) व्यतीत होने पर (प्रवव्राज) दीक्षित हुए—घर छोड कर दीक्षा हेतु वन को चले गये। (द्वादशभिः वर्षाभि)—लगातार बारह वर्षों तक (तपः कुर्वन्) तप करते हुए (वै) निश्चय से (केवल) केवलज्ञान को (प्रापत्) प्राप्त हुए।

अर्थ—वह सिद्धार्थ पुत्र श्री वर्द्धमान कुमार तीस वर्षों तक कुमार काल व्यतीत कर (अविवाहित रहकर) दीक्षित हुए पश्चात् बारह वर्षों तक कठिन तपश्चरण करते हुए (३०+१२=४२) व्यालीस वर्ष की अवस्था मे केवल ज्ञान को प्राप्त हुए।

उदिते केवलबोधे धनदः शक्राज्ञया चकार सभाम् ।
समवसृतिनामधेयां तस्य स्यादखिललोकगुरोः ॥४१॥

अन्वयार्थ—(केवल बोधे) केवलज्ञान के (उदिते) उदित होने पर (धनद) कुबेर ने (शक्राज्ञया) इन्द्र की आज्ञा से (समवसृति नामधेया) समवशरण नाम की (सभा) सभा (तस्य अखिल लोक गुरो) उन सम्पूर्ण लोक के गुरु की (चकार) बनायी।

अर्थ—श्री वीरनाथ भगवान् जो तीनो लोको के गुरु थे, को केवलज्ञान प्रगट होने पर, इन्द्र की आज्ञा से, कुबेर ने समवशरण नाम की सभा का निर्माण किया।

उस सभा मे बिलकुल बराबरी से बैठने के लिये-मुनियो, स्वर्ग की देवियो, आर्यिकाओ, ज्योतिषी, देवाङ्गनाओ, भवनवासी देवियो, व्यन्तर देवियो, भवनवासी देवो, व्यन्तर देवो, ज्योतिषी देवो, कल्पवासी देवो, मनुष्यो और पशुओ को बैठने के वृत्ताकार रूप से बारह प्रकोष्ठ थे। चारो दिशाओ से आने के लिये चार प्रवेश द्वार थे।

सुरनरमुनिवृन्दारकवृन्देष्वपि समुदितेषु तीर्थंकृतः ।
षट्षष्टिरहानि न निर्जगाम दिव्यध्वनिस्तस्य ॥४२॥

अन्वयार्थ—(सुरनरमुनिवृन्दारकवृन्देषु) भवन, व्यतर, ज्योतिषी, देवो, मुनियो एव कल्पवासी देवो के एव अन्य श्रोता समूह के (समुदितेषु) इकट्ठे होने पर (अपि) भी (तस्य तीर्थंकृत) उन कैवल्य प्राप्त तीर्थंकर भगवान् की (दिव्यध्वनि) दिव्यवाणी [निरक्षरी ओकारमयी] (षट्षष्टि.) छियासठ (अहानि) दिन तक (न निर्जगाम) नही निकली (प्रकट नही हुई) ।

अर्थ—देव, मनुष्य, मुनि आदि समस्त-भव्य उपदेशामृत पिपासुओ के उत्सुकतापूर्वक उस समवशरण सभा मे उपस्थित रहने पर भी, उन तीर्थंकर भगवान् महावीर की छियासठ दिन तक दिव्य ध्वनि नही खिरी ।

दिव्वध्वनेरनिर्गमकारणमवगम्य गणधराभावम् ।
आनेतुमगात्तमतः सुत्रामा गौतमग्रामम् ॥४३॥

अन्वयार्थ—(सुत्रामा) इन्द्र (गणधराभावम्) गणधर के अभाव को (दिव्यध्वनेरनिर्गमकारण) दिव्यध्वनि के नही खिरने का कारण (अवगम्य) जानकर (अत) वहाँ से [समवशरण सभा से] (तम्) उस गणधर को (आनेतु) लाने के लिये (गौतम गामम्) गौतम नामक ग्राम को (अगात्) गया ।

अर्थ—इन्द्र ने गणधर के अभाव को ही भगवान् की वाणी नही खिरने का कारण जानकर इस समवशरण सभा से उस गणधर को लाने के लिये गौतम ग्राम गया ।

तत्र स गत्वा ब्राह्मणशालायामिन्द्रभूतिनामानम् ।
छात्रशतपञ्चकेभ्यो व्याख्यानं विदधतं विप्रम् ॥४४॥

गौतमगोत्रं विद्यामदगर्वितमखिलवेदवेदाङ्ग-।
प्रतिबुद्धतत्त्वमवलोक्य कवलिकाछात्रवेषेण ॥४५॥
तद्व्याख्यानं श्रृण्वन्नेकोद्देशे द्विजन्मशालायाः ।
स्थित्वा ततो भवद्भिः प्रतिबुद्धं तत्त्वमिति तस्य ॥४६॥
छात्रेभ्यः प्रतिपादनसमयेऽसौ नासिकाग्रभङ्गेन ।
मुहुरत्यरुचिं प्रकटीकुर्वन्नुपलक्षितश्छात्रैः ॥४७॥

अन्वयार्थ—(तत्र) उस गौतम ग्राम मे, (गत्वा) जाकर (ब्राह्मण शालाया) एक ब्राह्मण शाला मे (ब्रह्मचर्याश्रम) (छात्र शतपञ्चकेभ्य) पाँच सौ छात्रो के लिये (व्याख्यान) उपदेश को (विदधत) देने वाले (गौतम गोत्र) गौतम इस गोत्र वाले तथा (विद्यामद गर्वित) विद्या के गर्व से गर्वित (अखिल वेद वेदाङ्ग प्रतिबुद्ध तत्त्वं) सम्पूर्ण वेद वेदाङ्गो के तत्व को जानने वाले (इन्द्र-भूति) इस नाम के (विप्र) ब्राह्मण को (अवलोक्य) देखकर (कवलिका छात्र वेषेण) लघुग्रास मात्र भोजी छात्र के वेष द्वारा (द्विजन्मशालायाः) उस ब्राह्मण शाला के (एकोद्देशे) एक प्रदेश मे (एक ओर) (स्थित्वा) खडे होकर (तद् व्याख्यान) उस इन्द्रभूति आचार्य के व्याख्यान को (श्रृण्वन्) सुनते हुए (तत्त.) उन आचार्य से आप लोगो द्वारा (तत्त्व) तत्त्व को (प्रतिबुद्ध) जाना इति ऐसा पूछने पर (छात्रेभ्य) छात्रो से (प्रतिपादन समये) बताने के समय (असौ) उस इन्द्र ने (नासिकाग्र) नासिका के अग्रभागो के (भङ्गेन) विकार द्वारा (नथुने फुलाकर) (मुहु) बार बार (अरुचि) अरुचि को (प्रकटी कुर्वन्) प्रकट करते हुए (छात्रै) छात्रो द्वारा (उपलक्षित) देख लिया गया ।

अर्थ—उस गौतम ग्राम को ब्राह्मण शाला मे जाकर पाँच सौ छात्रों को व्याख्यान देने वाले तथा अपनी विद्वत्ता के मद से

मदोन्मत्त सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को समझने वाले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण को देखकर अल्पतम ग्रासो मे भोजन लेने वाले छात्र के वेष मे उस ब्राह्मण शाला के एक प्रान्त भाग में (कोने मे) खडे होकर उसका व्याख्यान (समझाने की विधि) को सुनकर तुमने उनसे सही अर्थ जाना इस प्रकार पूछने पर छात्रो से प्रतिपादन करने के समय नथुने फुलाकर वार-बार अरुचि प्रकट करते हुए छात्रो के द्वारा उसकी उपेक्षा वृत्ति जान ली गई।

तेऽपि ततस्तच्चेष्टितमीदृशमावेदयन् स्वकीयगुरोः ।
सोऽपि ततो द्विजमुख्यस्तमपूर्वं छात्रमित्येवदत् ॥४८॥

अन्वयार्थ—(तेऽपि) वे छात्र भी (ततः) तदनन्तर (ईदृश) इस प्रकार (तच्चेष्टित) उसकी चेष्टा को (स्वकीय गुरो) अपने गुरु को (आवेदयन्) निवेदन करने लगे। (स) वह (द्विजमुख्य) ब्राह्मणों में प्रमुख आचार्य भी (तम्) उस (अपूर्वं) अनोखे (नवीन) (छात्र) छात्र को (इति) इस प्रकार (अवदत्) बोले।

अर्थ—इसके पश्चात् उसकी ऐसी चेष्टा को देखकर छात्रो ने अपने गुरु से निवेदन किया। उन ब्राह्मण प्रमुख आचार्य ने भी उस नये नये आये तथा आचार्य की व्याख्यान विधि की उपेक्षा करने वाले छात्र से इस प्रकार कहा—

शास्त्राणि करतलामलकायन्तेऽस्माकमिह समस्तानि ।
अपरेऽपि वादिनोऽस्माज्जायन्ते नष्टदुष्टमदाः ॥४९॥

अन्वयार्थ—(इह) यहाँ—इस भरत खण्ड मे (अस्माक) मेरे लिये (समस्तानि) सम्पूर्ण (शास्त्राणि) शास्त्र-चारो वेद, छह वेदाङ्ग, सभी उपनिषद्, अठारहो पुराण, व्याकरण, तर्क, दर्शन, कोष, इतिहास, नीति शास्त्र आदि (करतलामलकायन्ते) हथेली पर रखे हुए आमलक (आवले) को भाँति प्रत्यक्ष हैं। (अपरे) दूसरे

(अन्यान्य वादिनः) शास्त्रार्थी गण भी (अस्मात्) मुझ से (नष्टदुष्ट मदा) नष्ट हो गया है—दुष्ट अहकार जिनका—ऐसे हो गये हैं।

अर्थ—वह उस ब्राह्मण शाला का प्रमुख आचार्य इन्द्रभूति कहता है कि इस भारत खण्ड मे सम्पूर्ण शास्त्र वेद-वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण, मीमासा दर्शन, व्याकरण, तर्क, कोष इतिहासादि मुझे हाथ पर रखे हुए आंवले की भांति स्पष्ट ज्ञात हैं, दूसरे शास्त्रार्थी विद्वानो की भी विद्वत्ता का अहकार मैंने नष्ट कर दिया है।

तत्केन हेतुना तद्व्याख्यानं नैव रोचते तुभ्यम् ।
कथयेति ततस्तस्मै प्रतिवचनमुवाच सोऽपीत्थम् ॥५०॥

अन्वयार्थ—(तत् केन हेतुना) तो किस कारण से (तद् व्याख्यान) वह मेरा उपदेश (तुभ्य) तुम्हारे लिये (नैव) नही, बिलकुल नही (रोचते) रुचता है (कथय इति) यह बताइए (तत) अनन्तर (सोऽपि) वह (छात्रवेष धारी) इन्द्र भी (तस्मै) उस इन्द्रभूति गौतम आचार्य को (इत्थ) इस प्रकार (प्रतिवचन) उत्तर रूप मे (उवाच) बोला।

अर्थ—आगे आचार्य इन्द्रभूति गौतम कहते हैं कि जब मैं समस्त शास्त्रो का ज्ञाता तथा प्रवादियो के विद्यामद को गला (नष्टकर) देने वाला हूँ तो तुम्हे किस कारण से मेरा वह व्याख्यान (कथन) नही रुचता है—यह बतलाइये। तब छात्रवेषधारी वह इन्द्र इस प्रकार उत्तर देता है—

यदि सर्वशास्त्रतत्त्वं जानन्ति भवन्त एव तदमुष्याः ।
आर्यायाः कथयन्त्वर्थमिति पठति तत्काव्यम् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(यदि) अगर (भवन्त) आप (सर्वशास्त्र तत्त्व)

सम्पूर्ण शास्त्रो के तत्व को (जानन्ति) जानते हैं (तत्) तो (अमुष्या) इस (आर्याया) इस आर्या छन्द मे रचित पद्य का एक ही अर्थ (कथयन्तु) कहिये। (इति) इस प्रकार कहकर (तत्काव्य) उस कविता रूप रचना को (पठति) वह ब्राह्मण छात्रवेशधारी इन्द्र पढता है।

अर्थ—अगर आप समस्त शास्त्रो के मर्म को जानते हैं तो इस आया (आर्या छन्द मे रचित) पद का अर्थ वतलाइये ऐसा कहकर वह उस (आर्या छन्द मे रचित) पद को पढता है।

षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान् ।
विदुषां वरः स एव हि यो जानाति प्रमाण नयैः ॥५२॥

अन्वयार्थ—(य) जो (प्रमाण नयै) प्रमाण और नयो के द्वारा (षड्द्रव्यो नव पदार्थ त्रिकाल पञ्चास्तिकाय) (षट कायान्) छह द्रव्यो, नौ पदार्थों, तीन कालो, पांच अस्तिकायो, छह कार्य के जीवो के (जानाति) भले प्रकार जानता है (स एव) वही (विदुषा वर.) विद्वानो मे (ज्ञानियो मे) श्रेष्ठ है।

अर्थ—जो निकट भव्यजीव, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल-इन छह द्रव्यो, नौ पदार्थों-जीव, आश्रव बँध, सवर निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप रूप नव पदार्थों, भूत-भविष्यत् और वर्तमान इन तीन कालो, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश रूप पाँच अस्तिकायो तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस—इन छह कायो को नय-प्रमाण द्वारा भली प्रकार जानता है वही श्रेष्ठ विद्वान् अर्थात् सच्चा ज्ञानी या सम्यग्दृष्टि है।

श्रुत्वा तेनेत्युदितामश्रुतपूर्वामतीव विषमार्थाम् ।
आर्यामिमां ततोऽस्याः सोऽर्थमजानन्निति तमूचे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(तेन) उस ब्राह्मण विद्यार्थी का वेश धारण करने वाले इन्द्र द्वारा (इति) उपरिलिखित प्रकार से (उदिता) कही हुई (अश्रुतपूर्वा) पहले कभी न सुनी हुई (अतीव विषमार्थाम्) अत्यन्त विषम अर्थ वाली (इमा आर्या) इस आर्या छन्द मे विरचित पद को (श्रुत्वा) सुन कर (तत) अनन्तर (अस्या) इस आर्या पद के (अर्थं) अर्थ को (अजानन्) नही जानता हुआ (तम्) उस छात्रवेशधारी से (स) वह इन्द्रभूति आचार्य (इति) इस प्रकार (ऊचे) कहने लगे।

अर्थ—उस ब्राह्मण विद्यार्थी का वेश धारण करने वाले इन्द्र द्वारा कही हुई कभी पहले न सुनी हुई तथा विषम (कठिन) अर्थ से भरी उस आर्या को सुनकर, उसके अर्थ को नही जानता हुआ वह उससे इस प्रकार बोला।

कस्यच्छात्रस्तावत्त्वं कथयेत्याह सोऽपि भट्टार्हत् ।
श्रीवर्धमानभट्टारकस्य जगतीगुरोश्छात्रः ॥५४॥

अन्वयार्थ—(तावत् त्व) तो तुम (कस्य) किसके (छात्र) विद्यार्थी (शिष्य) हो (इति कथय) ऐसा कहिये। (स) वह (आह) बोला (भट्टार्हत्) वह योग्य शिष्य (अपि) भी (जगती-गुरो) इस जगत् भर (पृथ्वीतल) के गुरु (श्री वर्द्धमान भट्टार-कस्य) पूज्य वर्द्धमान का (छात्र) विद्यार्थी (अस्मि) हूँ।

सिद्धार्थनन्दनस्य छात्रस्त्वं चेन्महेन्द्रजालविदः ।
देवागमं जनस्य प्रतिदर्शयतो वियन्मार्गे ॥५५॥

अन्वयार्थ—(त्वं चेत्) यदि तुम सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान के शिष्य हो तो (वियन्मार्गे) आकाशमार्ग मे (जनस्य) जन समुदाय को (देवागम) देवो के आगमन को (प्रतिदर्शयत) दिखाने

वाले (महेन्द्रजालविद) महान् इन्द्रजाल को जानने वाले (जादूगर) के (छात्र) शिष्य (असि) हो ।

अर्थ—यदि तुम उन सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान के छात्र हो तो निश्चय ही आकाशमार्ग मे देवो के आगमन द्वारा लोगो को दिखाने वाले एक वडे जादूगर के ही शिष्य हो ।

तत्तेनैव विवादं सार्धं प्रकरोमि किं त्वया कार्यम् ।
त्वत्तो जयापजययोर्ममैव विद्वत्सु लघुता स्यात् ॥५६॥

अन्वयार्थ—(तत्) तो (त्वया) तुमसे (किं कार्यम्) क्या करना (तेनैव) उसी के (सार्द्धं) साथ (विवाद) शास्त्रार्थ (प्रकरोमि) करूँगा । (त्वत्तो) तुमसे (जयापजययो) जय या पराजय मे (ममैव) मेरी ही (विद्वत्सु) विद्वानो की गोष्ठी मे (लघुता) छोटापन (स्यात्) सिद्ध होगा ।

अर्थ—तो तुमसे क्या कहा जाय । मै तुम्हारे गुरु उसी सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान कुमार से ही तुम्हारे द्वारा पढी गयी आर्या पर विवाद करूँगा । तुम्हारे साथ विवाद होने पर जय-पराजय पर विद्वानो मे मेरी लघुता (हलकापन) होगी । क्योकि विद्वानो की विद्वत्ता विद्वानो से वार्तालाप मे ही सुरक्षित रहती है । अल्पज्ञो के साथ विवाद से तो हलकापन प्रदर्शित होता है ।

एहि व्रजाव इत्यभिधाय पुरोधाय गौतमः शक्रम् ।
समवसृतिं भ्रातृभ्यामायाद्वायुवह्निभूतिभ्याम् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(गौतमः) गौतम इन्द्रभूति आचार्य (एहि) आओ (व्रजाव) हम दोनो चलें (इत्यभिधाय) ऐसा कह कर (वायुवह्निभूतिभ्याम्) वायुभूति एव अग्निभूति दोनो (भ्रातृ-

भ्याम्) भाइयो के साथ (समवसृति) समवशरण सभा को (आयात्) गया।

अर्थ—आचार्य गौतम इन्द्रभूति उस छात्रवेशधारी इन्द्र से जिसने "षड् द्रव्य, नवपदार्थ" वाली 'आर्या' का अर्थ उनसे पूछा था—कहते हैं कि—'आओ हम दोनो वही चलें' ऐसा कह कर उस इन्द्र को आगे करके अपने दो भाइयो—वायुभूति एव अग्निभूति के साथ भगवान् वर्द्धमान-महावीर की समवशरण सभा की ओर जाते हैं।

दृष्ट्वा मानस्तम्भं विगलितमानोदयो द्विजन्माऽऽसीत् ।
भ्रातृभ्या सह जिनपतिमवलोक्य परीत्य तं भक्त्या ॥५८॥
नत्वा नुत्वा त्यक्त्वाऽशेषपरिग्रहमनाग्रहो दीक्षाम् ।
आदायाग्रिमगणभृद्बभूव सप्तर्द्धिसम्पन्नः ॥५९॥

अन्वयार्थ—(द्विजन्मा) वह संस्कार पवित्रित जन्म वाला ब्राह्मण इन्द्रभूति (मानस्तम्भं) मानस्तम्भ को (दृष्ट्वा) देखकर (विगलित मानोदय) गल गया है मान जिसका ऐसा (भ्रातृभ्या) दोनो वायु-भूति एव अग्निभूति भाइयो के साथ निरभिमानी (आसीत्) था (जिनपति) परमवीतराग जिनेन्द्र वर्द्धमान (महावीर) के (अवलोक्य) दर्शन करके (भक्त्या) भक्ति मे (त) उन्हे (परीत्य) प्रदक्षिणा देकर (नत्वा) नमस्कार कर (नुत्वा) स्तुति कर (अनाग्रह) मिथ्या आग्रह से रहित हुआ (अशेष परिग्रह) सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़ कर (दीक्षा आदाय) दीक्षा ग्रहण कर (सप्तर्द्धि सम्पन्न) सप्त ऋद्धियो से सम्पन्न होकर (अग्रिम गण-भृत्) प्रथम गणधर (बभूव) हुआ।

अर्थ—माता के उदर से जन्म लेने के साथ ही संस्कारो से भी पवित्र जन्म वाला वह आचार्य इन्द्रभूति अपने दोनो भाइयो—वायु-

भूति एव अग्निभूति के साथ मानस्तम्भ के दर्शन से नष्ट हो गया है मान जिसका निरभिमानी अत्यन्त विनत स्वभाव वाला हुआ जिनेन्द्र वीर-वर्द्धमान के दर्शन कर भक्तिपूर्वक उनकी प्रदक्षिणा देकर, प्रणाम कर, तथा स्तुति कर, परिग्रह को छोडकर, पूर्व मिथ्या-धारणाओ को तिलाञ्जलि देकर, दीक्षाग्रहण कर बुद्धि, चारण, विक्रिया, बल, औषध, रस आदि सप्त महा ऋद्धियो से सम्पन्न हुआ तथा भगवान् का प्रथम (मुख्य) गणधर हो गया। उसके दोनो भाई वायुभूति, अग्निभूति भी इसी तरह गणधर बन गये।

अथ भगवान् किंजीवोऽस्ति नास्ति वा किंगुणः कियान्कीदृक्
इत्यादिषडयुतप्रमितं तद्गणेटप्रश्नपर्यन्ते ॥ ६० ॥
जीवोऽस्त्यनादिनिधनः शुभाशुभविभेदकर्मणां कर्ता ।
सदसत्कर्मफलानां भोक्ता स्वोपात्ततनुमात्रः ॥ ६१ ॥
उपसंहरणविसर्पणधर्मज्ञानादिभिर्गुणैर्युक्तः ।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययलक्षणः स्वसवेदनग्राह्यः ॥ ६२ ॥
नोकर्मकर्मपुद्गलमनादिरूपात्तकर्मसम्बन्धात् ।
गृह्णन् मुञ्चन् भ्राम्यन् भवे भवे तत्क्षयान्मुक्तः ॥ ६३ ॥
इत्याद्यनेकभेदैस्तथा स जीवादिवस्तुसद्भावम् ।
दिव्यध्वनिना स्फुटमिन्द्रभूतये सन्मतिरवोचत् ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थ—(अथ) इन्द्रभूति गौतम के प्रमुख गणधर बनने पर (जीव किं अस्ति) क्या जीव है (वा नास्ति) अथवा नही है (किं गुण.) अगर है तो वह किस गुणवाला है (कियान्) वह कितने प्रमाण है अथवा कितने हैं (कीदृक्) वह कैसा है (इत्यादि षडयुतप्रमित) इत्यादि छह प्रमाण (तद्गणेटप्रश्नपर्यन्ते) उनके गणधर प्रमुख के प्रश्नो के अन्तमे (जीवः अस्ति) जीव है

(जीव. अनादि निधन) अनादि अनिधन है—आदि अन्तरहित है। ...शुभ विभेद कर्मणा कर्ता) शुभ और अशुभ भेदो से युक्त ...का कर्ता है (सदसत्कर्मफलाना भोक्ता) अपने शुभ या ... कर्मोके फल का भोगने वाला है। (स्वोपात्त तनुमात्रः) ... नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर के प्रमाण छोटा या वड़ा ...रण-विसर्पण) स्वभाव वाला (ज्ञानादिभिर्गुणैर्युक्त) ज्ञान ... गुणो से युक्त (ध्रौव्योत्पत्तिव्ययलक्षणः) ध्रौव्य ... द्रव्य लक्षण युक्त (स्वसवेदनग्राह्य) स्व सवेदन से ...रने योग्य (अहं प्रत्यय से ज्ञान मे आनेवाला) (नोकर्म-...गलमनादिरूपात् तत् कर्म सम्वन्धात्) नोकर्म शरीर ...द्रयादि, कर्म-ज्ञानावरणादि तथा रागादि रूप पुद्गलो को अनादि काल से कर्म रूप सम्वन्ध से (गृह्णन्) ग्रहण करते हुए (मुञ्चन्) उन कर्म शरीरादि को भोग लेने पर छोड़ते हुए (भवे-भवे) भव-भव मे अनेक जन्मो द्वारा गतियो मे घूमते हुए (तत्क्षयात्) उन कर्मों के सर्वथा क्षय से मुक्त हुआ इत्यादि (अनेक भेदै.) इस प्रकार अनेक भेदो से (जीवादि वस्तु सद्भावम्) जीव आदि (पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) के सद्भाव को (भगवान्) सन्मति भगवान् महावीर ने (इन्द्रभूतये) इन्द्रभूति गणधर के लिये (दिव्यध्वनिना) दिव्यध्वनि से (स्फुटम्) स्पष्ट रीति से (अवोचत्) कहा।

अर्थ—जब वह इन्द्रभूति आचार्य भगवान् के प्रमुख गणधर बन गये तब कोई स्वतन्त्र जीव तत्व है या नही ? अगर है तो वह किन विशेष गुणोवाला है ? वह कितना (किस आकार का) है ? कैसा है ? इत्यादि छह प्रकार गणधर द्वारा प्रश्न करने के बाद जीव है और वह अनादि निधन (शाश्वत) सदाकाल से सदा काल तक है। द्रव्यत न कभी नया उत्पन्न होता है और न कभी पूर्णतः

विनष्ट होता है वह अपने शुभ या अशुभ कर्मों का कर्ता है अपने ही शुभ या अशुभ कृत कर्मों का भोक्ता है, ससार मे कर्मों के कारण जैसा उसे शरीर मिला उस शरीर प्रमाण ही वह उपसहरण-विसर्पण अर्थात् सकोच विस्तार धर्म वाला है ज्ञान-दर्शन आदि गुणो से युक्त है। उत्पाद-व्यय ध्रौव्य वाला तथा स्वसवेदन से ग्रहण करने योग्य है वह अपने द्वारा उपार्जित कर्म सम्बन्ध मे नोकर्म कर्म पुद्गलो को ग्रहण करने वाला, कर्म फल भोगने के बाद उन्हे छोडने वाला, भव-भव मे घूमने वाला तथा कर्मों के पूर्ण क्षय बन्धन मुक्त हुआ इस प्रकार अनेक भेदो से जीवादि वस्तुओ के सद्भाव को भगवान् सन्मति महावीर ने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा स्पष्ट रीति से इन्द्रभूति गौतम गणधर के लिए कहा।

भगवान् की दिव्य ध्वनि के अनुसार आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे लिखा है—

जीवो उपयोगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससो ड्ढगई॥

श्रावणबहुलप्रतिपद्युदितेऽर्के रौद्रनामनि मुहूर्ते।
अभिजिद्गते शशांके तीर्थोत्पत्तिर्बभूव गुरोः॥ ६५॥

अन्वयार्थ—(श्रावणबहुल प्रतिपदि) श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (अर्के उदिते) सूर्य के उदित होने पर (रौद्र नामनि मुहूर्ते) रौद्र नाम के मुहूर्त मे (शशाके अभिजिद्गते) चन्द्रमा के अभिजित् नक्षत्र पर पहुँचने पर (गुरोः) लोक के गुरु या गौतम इन्द्रभूति के गुरु महावीर वर्द्धमान भगवान् के (तीर्थोत्पत्ति.) तीर्थ की (धर्म की) उत्पत्ति (बभूव) हुई।

अर्थ—श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन (वर्तमान में जो वीरशासन जयन्ती के रूप मे महान पर्व माना जाता है) सूर्य का उदय होने पर

रौद्र नामक मुहूर्त मे चन्द्रमा के अभिजित नक्षत्र मे होने पर तीनो लोको के गुरु वर्द्धमान महावोर के धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई अर्थात् समवशरण सभा में विपुलाचल पर्वत राजगृह मे उनकी प्रथम देशना हुई।)

तेनेन्द्रभूतिगणिना तद्दिव्यवचोऽववुध्य तत्त्वेन ।
ग्रन्थोऽङ्गपूर्वनाम्ना प्रतिरचितो युगपदपराह्णे ।। ६६ ।।

अन्वयार्थ—(तेन इन्द्रभूतिगणिना) उस इन्द्रभूति गणधर द्वारा (तत्त्वेन) तत्त्वत (दद्दिव्यवचो) उन महावीर भगवान् के दिव्य वचनो को (अववुध्य) जानकर युगपत् एक माथ (अपराह्ण) दिन के अन्तिम भाग मे (अङ्ग पूर्व नामा) अङ्ग व पूर्व नाम से (ग्रन्थ) ग्रन्थ (प्रतिरचित·) रचा ।

अर्थ—(उन इन्द्रभूति गणधर ने भगवान् महावीर की उस दिव्य वाणी को तत्त्वतः ज्ञात कर दिन के अपर भाग में अङ्ग पूर्व नामक आगमो की एक साथ रचना की)

प्रतिपादितं ततस्तत् श्रुतं समस्तं महात्मना तेन ।
प्रथितात्मीयसधर्मणे सुधर्माभिधानाय ।। ६७ ।।

अन्वयार्थ—(तेन महात्मना) उन महात्मा गौतम गणधर ने (तत) तदन्तर (तत् समस्त श्रुत) वह समस्त श्रुत (भगवान् वीरनाथ की दिव्यवाणी रूप) (सुधर्माभिधानाय) सुधर्मा नाम के (प्रथितात्मीय सधर्मणे) प्रसिद्ध अपने सहधर्मा गणधर के लिए (प्रतिपादित) प्रतिपादित किया ।

अर्थ—(उन महात्मा गणधर प्रमुख गौतम इन्द्रभूति ने वह समस्त श्रुतज्ञान जो सन्मति महावीर वर्द्धमान की दिव्य वाणी से

प्रसूत था वह अपने प्रसिद्ध सहधर्मी सुधर्माचार्य के लिए प्रतिपादित किया)।

सोऽपि प्रतिपादितवान् जम्बूनाम्ने सधर्मणे स्वस्यै ।
तेभ्यस्ततो गणिभ्योऽन्यैरपि तदधीतं मुनिवृषभैः ॥ ६८॥

अन्वयार्थ— (सोऽपि) उन सुधर्माचार्य नेमी (स्वस्यै) अपने (जम्बूनाम्ने) जम्बू कुमार नाम वाले (स्वधर्मणे) अपने सहधर्मी के लिए (प्रतिपादितवान्) वह श्रुत प्रतिपादित किया। (तत) अनन्तर (तेभ्य गणिभ्य) उन उन गणधरो से (अन्यै) दूसरे (मुनि-वृषभैं) मुनिश्रेष्ठो के द्वारा (तदधीतम्) वह श्रुत पढा गया।

अर्थ—(उन सुधर्माचार्य ने भी अपने सहधर्मी जम्बूस्वामी के लिए भी वह श्रुत प्रतिपादित किया तथा उन गणधरो से अन्य श्रेष्ठ मुनियो ने भी वह वीर भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रसूत तथा गौतम गणधर द्वारा अङ्ग पूर्वो मे ग्रथित तथा सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी से प्रतिपादित वह श्रुतज्ञान अन्य-अन्य श्रेष्ठ मुनियो द्वारा पढा गया)

सन्मतिजिनस्ततोऽसावासन्नविमुक्तिभव्यसस्यानाम्।
परमानन्दं जनयन् धर्मामृतवृष्टिसेकेन ॥ ६९ ॥
त्रिशतमिह वर्षाणां विहृत्य बहुजनपदानं जगत्पूज्यः।
सरसिजवनपरिकलिते पावापुरबहिरुद्याने॥ ७० ॥
वत्सरचतुष्टयेऽर्द्धत्रिमासहीने चतुर्थकालस्य ।
शेषे कार्तिककृष्ण चतुर्दश्यां निर्वृतिमवाप ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थ--(तत) तदनन्तर (असौ) यह जगत्पूज्यः लोक-पूज्य (सन्मति जिन) भगवान् सन्मति महावीर जिनेन्द्र (धर्मा-

मृतवृष्टिसेकेन) धर्म रूप अमृत वर्षा के सिञ्चन से (आसन्न-विमुक्ति भव्य सस्याना) निकट भविष्य मे ही जिन्हे मुक्ति की प्राप्ति होगी ऐसे भव्य जीवरूपो धान्यो को (परमानन्द जनयन्) अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करते हुए (इह) इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड मे (बहुजनपदान्) बहुत से जनपदो मे (वर्षाणा त्रिशत) तीस वर्ष तक (विहृत्य) घूमकर (चतुर्थ कालस्य) चतुर्थ काल के अर्द्ध त्रिमास (हीने) साढे तीन मास कम (वत्सर चतुष्टये) चार वर्ष (शेषे) शेष रहने पर (सरसिज वन परिकलिते) कमल वन से युक्त (पावापुर बहिरुद्याने) पावापुर के बाहरी भाग के उद्यान मे (उद्यान में स्थित सरोवर पर से) (कार्तिक कृष्ण चतुर्दश्या) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी (निवृ ति) निर्वाण को (आप) प्राप्त हुए।

अर्थ--तदनन्तर (गणधर प्राप्ति के अनन्तर) वह जगत्पूज्य सन्मति जिनेन्द्र धर्म रूप अमृत की वर्षा के सिञ्चन से निकट भविष्य मे ही मुक्ति प्राप्त होने वाले भव्यजीवरूपी धान्यो को अत्यधिक आनन्द उत्पन्न करते हुए तीस वर्ष तक इस भरत खण्ड के आर्य प्रदेश के अनेक जनपदो मे विहार करके जब चतुर्थ काल में साढे तीन मास कम चार वर्ष शेष रह गये तब कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी मे (रात्रि के अन्तिम प्रहर मे) कमल वनो से वेष्टित पावापुर के बाहरी उद्यान मे स्थित सरोवर से मुक्ति को प्राप्त हुए।

भगवत्परिनिर्वाणक्षण एवावाप केवलं गणभृत् ।
गौतमनामा सोऽपि द्वादशभिर्वत्सरैर्मुक्तः ॥७२॥

अन्वयार्थ—(भगवत्परिनिर्वाणक्षण एव) भगवान् महावीर के निर्वाण के समय ही (गणभृत्) मुनिसघ के नायक गौतम गणधर (केवल) केवलज्ञान को (अवाप) प्राप्त हुए (सोऽपि गौतमनामा) वह गौतम गणधर भी (द्वादशभि वत्सरे) बारह वर्षों मे (मुक्तः) मुक्त हो गये।

अर्थ—भगवान् वीरजिन के परिनिर्वाण के समय मे ही गौतम गणधर केवल ज्ञान सम्पन्न हो गये तथा वे गौतम गणधर भी बारह वर्ष मे मुक्त हो गये।

निर्वाणक्षण एवासावापत्केवलं सुधर्ममुनिः।
द्वादशवर्षाणि विहृत्य सोऽपि मुक्तिं परामाप ॥७३॥

अन्वयार्थ—(असौ) वह (सुधर्म मुनिः) सुधर्माचार्य (निर्वाण-क्षण एव) श्री इन्द्रभूति गौतम गणधर के निर्वाण के क्षण में ही (केवल) केवलज्ञान को (आपत्) प्राप्त हुए (सोऽपि) वह (सुधर्माचार्य) भी (द्वादश वर्षाणि) बारह वर्ष पर्यन्त (विहृत्य) विहार करके (परा मुक्ति) उत्कृष्ट मुक्ति को (आप) प्राप्त हुए।

अर्थ—उन सुधर्मा मुनि ने गौतम इन्द्रभूति गणधर के निर्वाण क्षण मे ही केवलज्ञान को प्राप्त किया तथा लगातार बारह वर्षों के विहार मे धर्मामृत की वर्षा कर उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त हुए। अर्थात् समस्त कर्मों का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त किया।

जम्बूनामाऽपि ततस्तन्निर्वृतिसमय एव कैवल्यम्।
प्राप्याष्टत्रिंशतमिह समा विहृत्याप निर्वाणम् ॥७४॥

अन्वयार्थ—(तत) सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर (जम्बू-नामाऽपि) जम्बू स्वामी भी (तन्निर्वृतिसमय एव) उन सुधर्मा-चार्य के परिनिर्वाण के समय ही (कैवल्य आप) केवल ज्ञान को प्राप्त कर (इह) इस भरत खण्ड के आर्य प्रदेश मे (अष्टत्रिंशत) अड़तीस (समा) वर्षों तक (विहृत्य) विहार करके (निर्वाणम्) निर्वाण को (आप) प्राप्त हुये।

अर्थ—श्री सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर जम्बू स्वामी ने उनकी मुक्ति के समय ही केवलज्ञान को प्राप्त किया तथा केवलज्ञानी के

रूप मे इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड मे अडतीस वर्षो तक लगातार विहार कर धर्मोपदेश के द्वारा भव्य जीवो का उपकार कर अष्ट कर्मो का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त किया।

एते त्रयोऽपि मुनयोऽनुबद्धकेवलिविभूतयोऽमीषाम् ।
केवलदिवाकरोऽस्मिन्नस्तमवाप व्यतिक्रान्ते ॥७५॥

अन्वयार्थ—(एते त्रयोऽपि मुनय) ये तीनो मुनि (अनुबद्ध केवलि विभृतय) (आसन्) अनुबद्ध केवली की विभू त से युक्त थे (अमीषाम्) इनके व्यतिक्रान्ते मोक्ष चले जाने पर (अस्मिन्) इस भारत खण्ड के आर्य प्रदेश मे (केवल दिवाकर.) केवलज्ञान रूप सूर्य (अस्त अवाप) अस्त को प्राप्त हो गया।

अर्थ—ये तीनो-गौतम गणधर, सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी अनुबद्ध केवली की सम्पदा को प्राप्त थे। इनके मोक्ष चले जाने पर इस भरत क्षेत्र मे केवलज्ञान रूपी सूर्य अस्त हो गया। इनके वाद केवलज्ञान किसो को नही हुआ।

जम्बूनामा मुक्ति प्राप यदासौ तथैव विष्णुमुनिः ।
पूर्वाङ्गभेदभिन्नाशेषश्रुतपारगो जातः ॥७६॥

अन्वयार्थ—(यदा) जिस समय (असौ) यह (जम्बू नामा) जम्बू स्वामो (मुक्ति) मुक्ति को (प्राप) प्राप्त हुए (तदेव) उसी समय (विष्णुमुनि) मुनि विष्णु (पूर्वाङ्गभेदभिन्नाशेष श्रुतपारग) पूर्व एव अङ्गो के भेदो से युक्त सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का पारगामी (जात.) हो गया।

अर्थ—जम्बू स्वामी मथुरा नगर के उद्यान से मोक्ष गये उनके मोक्ष जाते ही विष्णु नामक मुनिराज ग्यारह अङ्गो एव चौदह पूर्वो मे विभिन्न सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के पारगामी हो गये।

एवमनुबद्धसकलश्रुतसागरपारगामिनोऽत्रासन् ।
नन्द्यपराजितगोवर्धनाह्वया　　भद्रबाहुश्च ।।७७।।

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (नन्द्यपराजित गोवर्धनाह्वाः) नन्दि अपराजित गोवर्धन नामवाले (च) और (भद्रबाहु) भद्रबाहु (अनुबद्ध सकल श्रुतमागर पारगामिनः) क्रमानुसार सम्पूर्ण श्रुत रूपी समुद्र के पारगामी (अत्र) यहाँ (इस भरत खण्ड के आर्य क्षेत्र मे) (आसन) थे।

अर्थ—(इस प्रकार नन्दि, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु तथा पूर्व श्लोक मे कथित विष्णु सहित पाँच मुनि अनुक्रम से सम्पूर्ण श्रुत रूप सागर के पारगामो यहाँ इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड मे हुए थे)

एषां पञ्चानामपि काले वर्षशतसम्मितेऽतीते ।
दशपूर्वविदोऽभूवं तत् एकादश महात्मानः ।।७८।।

अन्वयार्थ—(एषा पञ्चानाम् अपि) इन पाँचो श्रुत ज्ञानियो के (वर्षशतसम्मिते) सौ वर्ष का प्रमाण (काले) समय (अतीते) व्यतीत होने पर (दशपूर्वविदो) दशपूर्वों के ज्ञान के धारी (एकादश) ग्यारह (महात्मानः) महान् आत्मा आत्मसाधक साधु (अभूवत्) हुए।

अर्थ—इन पाँचो श्रुतज्ञानियो के सौ वर्ष प्रमाण समय व्यतीत होने पर दशपूर्व ज्ञानधारी ग्यारह महात्मा हुए। ये महात्मा ग्यारह अङ्ग और दशपूर्व धारी थे अर्थात् इन्हे ग्यारह अगो एव दस पूर्व श्रुत का ज्ञान था।

तेषामाद्यो नाम्ना विशाखदत्तस्ततः क्रमेणासन् ।
प्रोष्ठिलनामा क्षत्रियसंज्ञो जयनागसेनसिद्धार्थाः ।।७९।।

धृतिषेणविजयसेनौ च बुद्धिमान्गङ्गधर्मनामानौ ।
एतेषां वर्षशतं त्र्यशीतियुतमजनि युगसंख्या ॥८०॥

अन्वयार्थ—(तेषा) उन ग्यारह महात्माओ मे (आद्य) सबके आदि का (नाम्ना) नाम से (विशाखदत्त. आसीत्) विशाखदत्त थे (तत क्रमेण) पश्चात् क्रम से (प्रोष्ठिलनामा) प्रोष्ठिल नामक, क्षत्रिय नामक, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्ग तथा धर्म नामक (आसन्) थे (एतेषा) इनकी (त्र्यशीतियुत) तेरासी सहित (वर्षशत) सौवर्ष (युग सख्या अजनि) समय सख्या थी ।

अर्थ—उन दशपूर्वधारियो मे सर्वप्रथम विशाखदत्त, द्वितोय प्रोष्ठिल फिर क्रमश क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषण, विजयसेन, बुद्धिमान, गङ्ग तथा धर्म नामक थे। ये एकसौ तेरासी वर्ष के समय में हुए अर्थात् इनका सबका सम्मिलित समय एक सौ तेरासो वर्ष था ।

नक्षत्रो जयपालः पाण्डुर्द्रुमसेनकंसनामानौ ।
एते पञ्चापि ततो बभूवुरेकादशाङ्गधराः ॥८१॥

अन्वयार्थ—(तते) तदनन्तर (नक्षत्र) नक्षत्र (जयपाल. जयपाल पाण्डु) पाण्डु (द्रुमसेन कसनामानौ) द्रुमसेन और कस नामक (एते पञ्च) ये पांच (एकादशाङ्गधरा.) ग्यारह अगधारी (बभूवु) हुए।

अर्थ—इसके बाद नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन और कस ये पाँच आचार्य ग्यारह अगधारी हुए।

विंशत्यधिकं वर्षशतद्वयमेषां बभूव युगसंख्या ।
आचाराङ्गधराश्चत्वारस्तत उद्भवन् क्रमशः ॥८२॥

अन्वयार्थ—(एषा युग संख्या) इनकी समय सख्या (विंशत्यधिक) बीस अधिक वर्ष (शतद्वय) दो सौ वर्ष अर्थात् दो सौ बीस वर्ष (बभूव) थी (तत॰) तदनन्तर (क्रमश) क्रम से (चत्वार) चार (आचाराङ्ग धरा) आचाराङ्ग प्रथम अग के धारी (उद्भवन्) उत्पन्न हुए।

अर्थ—इनकी सबकी समय सख्या दो सौ बीस वर्ष कुल मिलाकर थी। इसके बाद क्रम से चार आचार्य मात्र आचाराङ्ग प्रथम अग श्रुत के ज्ञानी हुए।

प्रथमस्तेषु सुभद्रोऽभयभद्रोऽन्याऽपरोऽपि जयबाहुः।
लोहार्योऽन्त्यश्चैतेऽष्टादशवर्षयुगसंख्या ॥८३॥

अन्वयार्थ—(तेषु) उन चारो मे (प्रथम) पहला (सुभद्र) सुभद्र (अन्यः) दूसरा (अभयभद्र) अभयभद्र (अपर) इसके बाद तीसरा (जयबाहु) जयबाहु (अन्यश्च) और अन्तिम लोहार्य (एते अष्टादश वर्ष युगसख्या) समय सख्या है।

अर्थ—उन चारो आचाराङ्ग प्रथम श्रुत के ज्ञानियो मे प्रथम सुभद्र, द्वितीय अभयभद्र, तृतीय जयबाहु और चौथे लोहार्य हुए इन चारो का सम्मिलित समय अठारह वर्ष था।

विनयधरः श्रीदत्तः शिवदत्तोऽन्योऽर्हद्दत्तनामैते।
आरातीया यतयस्ततोऽभवन्नङ्गपूर्वदेशधराः ॥८४॥

अन्वयार्थ—(तत) इसके पश्चात् (विनयधर॰) विनयधर (श्रीदत्त) श्रीदत्त (शिवदत्त) शिवदत्त (अन्य अर्हद्दत्त) और अर्हद्दत्त नामक (एते आरातीया यतय) ये आरातीय यति अङ्गपूर्व (देशधरा) अङ्गपूर्व देशधारी (अभवन्) हुए।

अर्थ—उन चार आचाराङ्ग धारियो के पीछे विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त तथा अर्हद्दत्त ये चार आरातीय यति एक देश अङ्गपूर्वों के धारी हुए।

सर्वांगपूर्वदेशैकदेशवित्पूर्वदेशमध्यगते ।
श्रीपुण्ड्रवर्धनपुरे मुनिरजनि ततोऽर्हद्बल्याख्यः ॥८५॥

अन्वयार्थ—(सर्वाङ्ग पूर्व देशैक देश वित्पूर्व देशमध्य गते) सम्पूर्ण अंगपूर्वों के एक देश ज्ञानधारियो तथा पूर्वो के एकदेश पूर्व ज्ञानधारियो के मध्य मे (श्रीपुण्ड्रवर्धनपुरे) श्री पुण्ड्रवर्धन नामक नगर मे (अर्हद्बल्याख्य) अर्हद्बलि नामक (मुनि अजनि) मुनि हुए।

अर्थ—अनन्तर सम्पूर्ण अङ्गपूर्वों के एकदेश ज्ञानधारियों तथा पूर्वों के एक देश ज्ञानधारियो के बीच श्री पुण्ड्रवर्धन नगर मे अर्हद्बलि नामक एक मुनि हुए।

स च तत्प्रसारणाधारणाविशुद्धातिसत्क्रियोद्युक्तः ।
अष्टांगनिमित्तज्ञः सघानुग्रहनिग्रहसमर्थः ॥८६॥

अन्वयार्थ—(स च) और वह (तत्प्रसारण धारणाविशुद्धाति-सत्क्रियोद्युक्त.) उस श्रुतज्ञान के प्रसारण धारण विशुद्धि करण आदि सत्क्रियाओ मे तत्पर, (अष्टाङ्गनिमित्तज्ञ:) अष्टाङ्गनिमित्तो का ज्ञाता तथा (सघानुग्रहनिग्रहसमर्थ) मुनि सघ पर अनुग्रह तथा निग्रह करने में समर्थ (थे)।

अर्थ—और वह अर्हद्बलि आचार्य उस श्रुतज्ञान के प्रसार करने, धारण करने और उसे निर्मल बनाने आदि उत्तम क्रियाओ में पूर्ण सलग्न अष्टाग निमित्तो के ज्ञाता तथा मुनि सघ के अनुग्रह निग्रह (उपदेश प्रायश्चित्त) आदि मे पूर्ण समर्थ थे।

आस्ते संवत्सरपञ्चकावसाने युगप्रतिक्रमणम् ।
कुर्वन्योजनशतमात्रवर्तिमुनिजनसमाजस्य ॥८७॥
अथ सोऽन्यदा युगान्ते कुर्वन् भगवान्युगप्रतिक्रमणम् ।
मुनिजनवृन्दमपृच्छत्किं सर्वेऽप्यागता यतयः ॥८८॥

अन्वयार्थ—(अथ) अनन्तर (योजन शतमात्रवर्ति मुनि समाजस्य) सौ योजन मे स्थित मुनि समाज के (सम्वत्सर पञ्चकावसाने) पाँच वर्षों की समाप्ति पर होने वाले (युगप्रतिक्रमणम्) युग प्रतिक्रमण को करते हुए (आस्ते) थे (अन्यदा) किसी समय (भगवान्) अर्हद्वलि (युगप्रतिक्रमण कुर्वन्) युग प्रतिक्रमण करते हुए (मुनिवृन्दं) मुनि समूह को (अपृच्छत्) पूछा कि (सर्वे यतयः) सम्पूर्ण मुनि (आगता) आ गये ?

अर्थ—उन भगवान् अर्हद्वलि ने सौ योजन मात्र मे बसने वाले मुनियो को पाँच वर्षो की समाप्ति पर होने वाले युगप्रतिक्रमण को जब करा रहे थे तब मुनिसमूह से पूछा कि क्या सभी मुनि आ गये ?

तेऽप्यूचुर्भगवन्यमात्मात्मीयेन सकलसंघेन ।
समामागतास्ततस्तद्वचः समाकर्ण्य सोऽपि गणी ॥८९॥
काले कलावमुष्मिन्नितः प्रभृत्यत्र जैनधर्मोऽयम् ।
गणपक्षपातभेदैः स्थास्यति नोदासभावेन ॥९०॥
इति सञ्चिन्त्य गुहायाः समागता ये यतीश्वरास्तेषु ।
कांश्चिन्नन्द्यभिधानान् कांश्चिद्वीरा ह्वयानकरोत् ॥९१॥

अन्वयार्थ—(तेऽपि) वे मुनिराज भी (ऊचुः) बोले (भगवन्) हे भगवान् (वय) हम लोग (आत्मीयेन) अपने सकल (संघेन)

सम्पूर्ण सघ के साथ (सम आगता.) साथ-साथ आ गये हैं (तद्-वच समाकर्ण्य) उन वचनो को सुनकर (सोऽपि गणी) वह अर्हद्‌वलि आचार्य भी (अमुस्मिन् कलौ काले) इस कलि काल मे (अत्र) इस भरत खण्ड आर्य देश मे (अय जैन धर्म.) यह जैन धर्म (इत प्रभृति) अब से लेकर (गणपक्षपातै) गण संघ आदि के पक्षपात से (स्थास्यति) स्थिर रहेगा (न उदासभावेन) उदास भाव से (तटस्थ भाव से) नही (इति सञ्चित्य) ऐसा सोचकर (तेषु) उन मुनियो मे (ये यतीश्वरा) जो मुनि (गुहायाः समागताः) गुफा से आये थे (काश्चित् नद्य भिधानात्) किन्ही को 'नन्दी' इस नाम से (काश्चिद् वीरोह्वयान्) किन्ही को 'वीर' संज्ञा से युक्त (अकरोत्) किया।

अर्थ—वे मुनिराज भी आचार्य महाराज के पूछने पर बोले कि हे भगवान् हम अपने सम्पूर्ण सघ के साथ आ गये हैं उनके इन वचनो को सुनकर उन आचार्य ने भी यह सोचकर कि इस कलि-काल में इस भरत खण्ड के आर्य खण्ड मे जैन धर्म अब से लेकर गण (सघ) आदि के पक्षपात को लेकर चलेगा, निरपेक्ष (तटस्थ भाव) से नही'—उन मुनियो मे जो गुफा से आये थे उनमे किन्ही को 'नन्दी' सज्ञा से अभिहित किया व किन्हो को 'वीर' इस सज्ञा से युक्त किया।

प्रथितादशोक वाटात्समागता ये मुनीश्वरास्तेषु ।
कांश्चिदपराजिताख्यान्कांश्चिद्देवाह्वयानकरोत् ॥९२॥

अन्वयार्थ--(ये मुनीश्वरा) जो मुनिराज (प्रथितादशोक वाटात्) प्रसिद्ध अशोक वृक्षो के उद्यान से (समागताः) आये हुए थे (तेषु काश्चित् अपराजिताख्यान्) उनमे किन्ही को 'अपराजित' इस नाम से (काश्चिद्देवाह्वयान्) किन्ही को 'देव' इस नाम से (अकरोत्) किया।

अर्थ—जो मुनिराज प्रसिद्ध अशोक वृक्षो के उद्यान से आये थे, उनमे से किन्ही को 'अपराजित' नाम से किन्ही को 'देव' इस नाम से अभिहित किया ।

पञ्चस्तूप्यनिवासादुपागता येऽनगारिणस्तेषु ।
कांश्चित्सेनाभिख्यान्कांश्चिद्भद्राभिधानकरोत् ॥९३॥

अन्वयार्थ—(येऽनगारिण) जो अनगार (साधु) (पञ्चस्तूप्य निवासाद्) पञ्चस्तूपा निवास से (उपागता) आये थे (काश्चित् सेना भिख्यान्) किन्ही को 'सेन' इस नाम से तथा (काश्चित् भद्राभिख्यान्) किन्ही को 'भद्र' नाम से (अकरोत्) किया ।

अर्थ—जो गृह विरत साधु पञ्चस्तूप्य निवास से आये थे उनमे किन्ही को 'सेन' नाम दिया तथा किन्ही को 'भद्र' नाम दिया ।

ये शालमलीमहाद्रुममूलाद्यतयोऽभ्युपागतास्तेषु ।
कांश्चिद्गुणधर संज्ञान्कांश्चिद्गुप्ताह्वयानकरोत् ॥९४॥

अन्वयार्थ—(ये यतय) जो इन्द्रिय दमन करने वाले साधु (शालमलीमहाद्रुममूलात्) शालमली नामक महा वृक्ष के मूल से (अभ्युपागता) आये थे (तेषु) उनमे (काश्चित्) किन्हीं को 'गुणधर' सज्ञा से युक्त किया (काश्चित् गुप्ताह्वयान्) किन्ही को 'गुप्त' इस नामसे अभिहित (अकरोत्) किया ।

अर्थ—जो इन्द्रिय दमन करने वाले साधु शालमली नामक महावृक्ष की शाखाओ मे ध्यान करते थे वहाँ से आये साधुओ मे किन्ही को 'गुणधर' सज्ञा से युक्त किया तथा किन्ही को 'गुप्त' संज्ञा से युक्त किया ।

ये खण्डकेसरद्रुममूलान्मुनयः समागतास्तेषु ।
कांश्चित्सिंहाभिख्यान्कांश्चिश्चन्द्राह्वयानकरोत् ॥९५॥

अन्वयार्थ—(खण्डकेसरद्रुममूलात्) दरार युक्त केसर वृक्ष के मूल से (ये मुनय) जो मुनि (समागताः) आये थे (तेषु) उनमे (काश्चित् सिंहाभिख्यान्) किन्ही को 'सिंह' इस नाम से (काश्चित् चन्द्राह्वयान्) किन्ही को 'चन्द्र' इस नाम से (अकरोत्) किया ।

अर्थ—जो मुनि खोह युक्त केसर वृक्ष के मूल से आये थे उनमे किन्ही को 'सिंह' इस नाम से किन्ही को 'चन्द्र' इस नाम से युक्त किया ।

आयातौ नन्दिवीरौ प्रकटगिरिगुहावासतोऽशोकवाटा-
द्देवाश्चान्योऽपरादिर्जित इति यतिपौ सेनभद्राह्वयौ च ।
पञ्चस्तूप्यात्सगुप्तौ गुणधरवृषभः शाल्मलीवृक्षमूला-
न्निर्यातौ सिंहचन्द्रौ प्रथितगुणगणौ केसरात्खण्डपूर्वात् ।९६।

उक्तञ्च—जैसा कि अन्यत्र भी कहा है—

अन्वयार्थ—(प्रकटगिरिगुहावासतो) जो मुनि प्रकट रूप से पर्वत की गुहा के निवास से (आयातौ) आये थे (नन्दि वीरौ) वे 'नन्दि' और 'वीर' नाम से, (अशोक वाटान्) अशोक वृक्षो के उद्यान से (आयातौ) आये (देवाश्चान्योऽपरादिर्जित इति) 'देव' तथा 'अपराजित' इस नाम से, (पञ्चस्तूप्यात् समायातौ यतिपौ) पञ्चस्तूप्य से आये (यति सेनभद्राह्वयौ) 'सेन' और 'भद्र' नाम से (शाल्मली वृक्षमूलात्) शाल्मली वृक्षो के मूल से (आयातौ) आये हुए (सगुप्तौ) गुप्त सहित (गुणधर वृषभ) गुणधर श्रेष्ठ (खण्ड पूर्वात् केसरात्) खण्ड केसर के मूल से (निर्यातौ) आये हुए (प्रथित गुणगणौ) प्रसिद्ध गुण समूह से युक्त (सिंहचन्द्रौ) 'सिंह' एव 'चन्द्र' नामो से युक्त हुए ।

अर्थ—प्रकट रूप से जो मुनिगण गुफाओ के आवास से आये थे वे 'नन्दि' और 'वीर' जो अशोक वृक्षो के उद्यान से आये थे वे 'देव' एव 'अपराजित' जो पञ्चस्तूप निवास से आये थे वे 'सेन' और 'भद्र' जो शाल्मली वृक्षो के मूल से आये थे वे 'गुणधर' और 'गुप्त' तथा जो खण्ड केसर वृक्ष मूल से आये थे प्रसिद्ध गुणधारी 'सिह' तथा 'चन्द्र' नाम वाले हुए।

अन्ये जगुर्गुहाया विनिर्गता 'नन्दिनो' महात्मानः ।
'देवा'श्चाशोकवनात्पञ्चस्तूप्यास्ततः 'सेनः' ॥९७॥
विपुलतरशाल्मलीद्रुममूलगतावासवासिनो 'वीराः' ।
'भद्रा'श्च खण्डकेसरतरुमूलनिवासिनो जाताः ॥९८॥

अन्वयार्थ—(गुहाया विनिर्गता) गुहा से निकले हुए (महात्मान नन्दिन) महात्मा 'नन्दी' (अशोक वनात्) अशोक वन से आये हुए (देवा) 'देव' (तत) तदनन्तर (पञ्चस्तू प्यात्) पञ्चस्तूपो से (सेनः) 'सेन' (विपुलतरशाल्मली द्रुममूलगता वास वासिन) विपुल शाल्मली वृक्ष के मूल मे आवास निवास करने वाले (वीराः) 'वीर' (खण्डकेसरतरुमूलनिवासिनः) खण्ड केसर वृक्षो के मूल में निवास करने वाले (भद्राः) 'भद्र' (जाता) हुए (इति अन्ये जगु) ऐसा अन्य गुरु परम्परा लिखने वालो ने कहा है।

अर्थ—गुहा से निकले हुए महात्मा 'नन्दी' अशोक वन से आये हुए 'देव' पञ्चस्तूप्यो से 'सेन' शाल्मली वृक्षो के मूल मे ध्याना-ध्यान करने वाले 'वीर' तथा खण्ड केसर वृक्षो के मूलो मे निवास करने वाले 'भद्र' कहलाये।

गुहायां वासितो ज्येष्ठो द्वितीयोऽशोकवाटिकात् ।
निर्यातौ 'नदि' 'देवा'भिधानावाद्यावनुक्रमात् ॥९९॥

पञ्चस्तूप्यास्तु 'सेना'नां 'वीरा'णां शाल्मलीद्रुमः।
खण्डकेसरनामा च 'भद्रः' 'सिहो'ऽस्य सम्मतः ॥१००॥

अन्वयार्थ—(गुहाया वासित ज्येष्ठः) गुफाओ मे रहने वाला प्रथम (अशोकवाटिकात्) अशोक वाटिका से निकला (दूसरा ये आद्यो) आदि के दो (अनुक्रमात्) क्रमानुसार (निर्यातो) निकले हुए ('नन्दि-देवा' भिधानात्) 'नन्दि' और 'देव' के नाम से (पञ्च-स्तूप्या) पञ्चस्तूप वासी सेनो के नाम से (शाल्मलिद्रुमः) शाल्मलि वृक्षो से आये वीरो के नाम से (खण्डकेसरनामा) केसर वृक्षो की खोह से आये 'भद्र' तथा 'सिंह' इस नाम से (अस्य-मम्मतः) इन पूज्य अर्हद् बलि आचार्य को मान्य थे।

अर्थ—(गुफा मे रहने वाले पहले अशोक वृक्षो के उद्यानो से आने वाले, द्वितीय ये आदि के दो क्रमश 'नन्दि' तथा 'देव' नाम से, अभिहित थे, पञ्चस्तूप्य वासी 'सेनो' के नाम से, शाल्मलि वृक्षो से आये 'वीर' नाम से, केसर वृक्षो की खोह से आये 'भद्र' तथा 'सिंह' नाम से, इन पूज्य अर्हद् बलि आचार्य को मान्य थे।)

एवं तस्यार्हद्बलेर्मुनिजनसङ्घप्रवर्तकस्यासन्।
विनययजना मुनीन्द्राः पञ्चकुलाचारतोपास्याः ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (तस्य) उन (मुनि संघ प्रवंर्तकस्य) मुनि सघ के प्रवर्तक (अर्हद्बले) अर्हद्बलि का (विनय यजना) विनय पूर्वक अपने आचार्य की पूजा करने वाले (मुनीन्द्रा) मुनीश्वर (पञ्चकुलाचारत) पांच कुलो के आचार से (उपास्याः) उपासनीय (आसन्) थे।

अर्थ—(इस प्रकार मुनि संघ के प्रवर्तक उन आचार्य अर्हद्बलि के विनय पूर्वक पूजा करने वाले मुनिवर इन पाँच कुलो के आचार से—

१ गुफाओ के निवास से आने वाले, २ अशोक वृक्षो के उद्यान से आने वाले, ३. पञ्चस्तूप्य निवास से आने वाले, ४ शाल्मली वृक्षो की खोह से आने वाले, तथा ५ केसर वृक्षो की खाह से आने वाले—इस प्रकार पाँच समूहो के आचार से वे उपासनीय थे।)

तस्यानंतरमनगारपुङ्गवो माघनन्दिनामाऽभूत् ।
सोऽप्यङ्गपूर्वदेशं प्रकाश्य समाधिना दिवं यातः ॥१०२॥

अन्वयार्थ—(तस्य) उन अर्हद्वलि के (अनन्तर) पश्चात् (माघनन्दिनामा) माघनन्दि नाम के (अनगार पुङ्गव) साधुओं मे श्रेष्ठ, (अभूत्) हुए, (सोऽपि) वह भो (अङ्गपूर्व देश प्रकाश्य) अग और पूर्वो के एक देश का प्रकाशन कर (ममाधिना) समाधि-मल्लेखना से (दिव यात) स्वर्ग को प्राप्त हुए।

अर्थ—उन अर्हद्वलि आचार्य के वाद माघनन्दि नाम के श्रेष्ठ साधु हुए तथा उन्होने अग एवं पूर्वो के एकदेश का प्रकाशन कर परम्परा चलाकर समाधिपूर्वक मरण कर स्वर्ग प्राप्त किया।

देशे ततः सुराष्ट्रे गिरिनगरपुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ ।
चंद्रगुहाविनिवासी महातपाः परममुनिमुख्यः ॥१०३॥
अग्रायणीयपूर्वस्थितपंचमवस्तुगतचतुर्थमहा ।
कर्मप्राभृतकज्ञः सूरिर्धरसेननामाऽभूत् ॥१०४॥

अन्वयार्थ—(तत.) तदनन्तर (सुराष्ट्रे देशे) सौराष्ट्र देश मे, (गिरिनगर पुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ) गिरिनगरपुर के निकट उज्यंयन्त पर्वत पर (चन्द्रगुहा विनिवासी) चन्द्र गुहा मे रहने वाले (महातपा.) महा तपस्वी (परममुनि मुख्य॰) श्रेष्ठ मुनियो मे मुख्य-आचार्य (अग्रायणीय पूर्व स्थित पञ्चमवस्तुगत चतुर्थ महाकर्म प्राभृतकज्ञ.) अग्रायणो नामक द्वितीय पूर्व स्थित पञ्चम

वस्तु के अन्तर्गत चतुर्थ महाकर्म प्राभृत के ज्ञाता (सूरि) आचार्य धरसेन नाम के (अभूत्) थे ।

अर्थ—तदनन्तर सौराष्ट्र देश मे गिरिनगरपुर जिसको आज जूनागढ कहा जाता है उसके निकट उज्जयन्त पर्वत पर चन्द्र नामक गुफा मे निवास करने वाले महातपस्वी, मुनियो मे श्रेष्ठ तथा अग्रायणी नामक दूसरे पूर्व के पञ्चम वस्तु के अन्तर्गत चौथे महाकर्म प्राभृत के ज्ञाता धरसेन नामक श्रेष्ठ आचार्य थे ।

सोऽपि निजायुष्यान्तं विज्ञायास्माभिरलमधीतमिदम् ।
शास्त्रं व्युच्छेदमवाप्स्यतीति सञ्चिन्त्य निपुणमतिः ॥१०५॥
देशेन्द्रदेशनामनि वेणाकतटीपुरे महामहिमा ।
समुदितमुनीन् प्रति ब्रह्मचारिणा प्रापयल्लेखम् ॥१०६॥

अन्वयार्थ—(निपुणमति) निपुण बुद्धि वाले (महामहिमा) महान् महिमा वाले (सोऽपि) वह धरसेन मुनि नेमी (निजायुष्यान्तं) अपनी आयु के अन्त को जान कर (अस्माभिः) हमारे द्वारा (अलं अधीत इदं शास्त्र) पर्याप्त रूप से गम्भीर रूप से अध्ययन किया गया यह शास्त्र (व्युच्छेदं) व्युच्छित्ति को (विनाश को) (अवाप्स्यतीति) प्राप्त हो जायगा ऐसा (विज्ञाय) जान कर (वेणाकतटी पुरे) वेणाक के (इस नाम वाली नदी के) किनारे स्थित पुर मे (इन्द्रदेश नामनि) इन्द्र देश नामक (देशे) देश मे (समुदित मुनीन् प्रति) इकट्ठे हुए मुनियो के प्रति (ब्रह्मचारिणा) एक ब्रह्मचारी द्वारा (लेखम्) लेख (पत्र) (प्रापयत्) पहुँचाया ।

अर्थ—निपुण बुद्धि से युक्त महा महिमाशाली, उन धरसेन महामुनि ने भी अपनी आयु का अन्तिम समय जानकर हमारे द्वारा गम्भीर रूप से अध्ययन किया गया यह शास्त्र कालान्तर मे विच्छेद

हो जाने वाला है ऐसा जान कर वेणाक नदी के किनारे स्थित पुर मे, जो कि इन्द्र नामक देश मे था—स्थित मुनि समुदाय के प्रति एक ब्रह्मचारी के द्वारा लेख (पत्र) पहुँचवाया।

आदाय लेखपत्रं तेऽप्यथ तद्ब्रह्मचारिणो हस्तात् ।
प्रविमुच्य बन्धनं वाचयाम्बभूवुस्तदा महात्मानः ॥१०७॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (तेऽपि महात्मान) वे महात्मा साधुजन (तद् ब्रह्मचारिणो हस्तात्) उस ब्रह्मचारी के हाथ से (लेख पत्रं आदाय) उस पत्र को प्राप्त कर (बन्धन प्रविमुच्य) उसके बन्धनो को खोल कर (तदा) उस समय (वाचयाम्बभूवुः) पढा।

अर्थ—उन महात्मा साधुओ ने भी उस ब्रह्मचारी के हाथ से पत्र लेकर उसका बन्धन खोल कर उस समय पढा।

स्वस्ति श्रीमत इत्यूर्जयन्ततटनिकटचन्द्रगुहा-
वासाद्धरसेनगणी वेणाकतटसमुदितयतीन् ॥१०८॥
अभिवन्द्य कार्यमेवं निगदत्यस्माकमायुरवशिष्टम् ।
स्वल्पं तस्मादस्मच्छ्रुतस्य शास्त्रस्य व्युच्छित्तिः ॥१०९॥
न स्याद्यथा तथा द्वौ यतीश्वरौ ग्रहणधारणसमर्थौ ।
निशितप्रज्ञौ यूयं प्रस्थापयतेति लेखार्थम् ॥११०॥

अन्वयार्थ—(स्वस्ति श्रीमत) कल्याण भाजन हो, शोभा युक्त हो (ऊर्जयन्ततट निकटचन्द्रगुहावासात्) ऊर्जयन्त को तलहटी के निकट चन्द्र गुहा निवास से (धरसेन गणी) धरसेन आचार्य (वेणाकतटसमुदितयतीन्) वेणा नदी के तटवर्ती स्थित मुनियों को (अभिवद्य) नमस्कार कर (एवं कार्यं निगदति) यह कार्य कहना

है कि (अस्माक) हमारी (आयुः) आयु (स्वल्प) थोडी (अवशिष्ट) बची है (तस्मात्) इस कारण से (अस्मत् श्रुतस्य) हमारे द्वारा अधीन श्रुतज्ञान की (या सुने गये) (शास्त्रस्य) शास्त्र की (व्युच्छित्ति) विच्छेद (यथा न स्यात्) जैसे न हो सके (तस्मात्) इस कारण से (ग्रहण धारणसमर्थौ) ग्रहण करने एव उसकी धारणा करने मे समर्थ (निशित प्रज्ञौ) तीक्ष्ण प्रतिभा वाले (द्वौ यतीश्वरौ) दो मुनिवर (प्रस्थापयत्) भेजिए (इति) इस प्रकार (लेखार्थम्) लेख का अर्थ था ।

अर्थ—कल्याण भाजन एव शोभा युक्त हो, ऊर्जयन्त (गिरिनार) पर्वत की तलहटी मे स्थित चन्द्र नामक गुफा के आवास से आचार्य धरसेन वेणाक नदी के तट पर एकत्र मुनिराजो की वन्दना कर यह कार्य कहता है कि हमारी आयु अब अल्प शेष है इस कारण हमारे द्वारा अधीन शास्त्र (श्रुतज्ञान) का जैसे विच्छेदन हो जावे अत ग्रहण और धारण करने में समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि वाले दो मुनिराज (यहाँ) भिजवाये जावें (आप भिजवावें) यही लेख-पत्र का तात्पर्य था ।

सम्यगवधार्य तैरपि तथाविधौ द्वौ मुनी समन्विष्य ।
प्रहितौ तावपि गत्वा चापतुररमूर्जयन्तगिरिम् ॥१११॥

अन्वयार्थ—(तैरपि) उन मुनिराजो द्वारा (सम्यक् अवधार्य) भले प्रकार निश्चय करके (तथाविधौ) उस प्रकार के (तीक्ष्ण बुद्धि वाले (द्वौ मुनी) दो मुनियो को (समन्विष्य) खोज करके (प्रहितौ) भेजा गया (तावपि) वे दोनो भी (गत्वा) जाकर यथा शीघ्र (ऊर्जयन्तगिरि च आपतु) ऊर्जयन्तगिरि पहुँचे ।

अर्थ—उन वेणाक तटवर्ती मुनिराजो द्वारा भले प्रकार निश्चय करके उस प्रकार के तीक्ष्ण बुद्धि वाले दो मुनियो को खोजकर

धरसेनाचार्य महाराज के अनुरोध से वहाँ भेजा वह मुनिद्वय भी शीघ्र ही ऊर्जयन्त गिरि पहुँचे।

आगमनदिने च तयोः पुरैव धरसेनसूरिरपि रात्रौ।
निजपादयोः पतन्तौ धवलवृषावैक्षत स्वप्ने ॥११२॥

अन्वयार्थ—(धरसेन सूरिरपि) धरसेन आचार्य ने भी (रात्रौ) रात्रि मे (पुरैव) पुरा-एव उनके (दो मुनियो के) आगमन के पहले ही (तयो.) उन दोनो के (आगमन दिने) आने के दिन (निजपादयो) अपने पाँवो मे (पतन्तौ) गिरते हुए (धवलवृषौ) दो सफेद बैल (स्वप्ने ऐक्षत) स्वप्न मे देखे।

अर्थ—उन धरसेनाचार्य ने उन दो मुनियो के आने के दिन उनके आने के पहले ही रात्रि मे अपने पावो मे पडते हुए दो सफेद बैल स्वप्न मे देखे।

तत्स्वप्नेक्षणमात्राज्जयतु श्रीदेवतेति समुपलपन्।
उदतिष्ठदतः प्रातः समागतावैक्षत मुनी द्वौ ॥११३॥

अन्वयार्थ—(तत्स्वप्नेक्षणमात्रात्) उस स्वप्न को देखने मात्र से (श्रीदेवता जयतु) श्रीदेवता जयवन्त हो (इति) इस प्रकार (समुपलपन्) कहते हुए (प्रातः) प्रात काल (उदतिष्ठदत) उठते हुए ही (समागतौ) आये हुए (द्वौ मुनी) दो मुनि (ऐक्षत) देखे।

अर्थ—उस स्वप्न को देखने मात्र से 'श्री देवता जयवन्त हो' ऐसा कहते हुए प्रात काल उठते ही उन्होने आये हुए दो मुनियो को देखा।

प्राघूर्णकोचितविधिं तयोर्विधायादरात्ततस्ताभ्याम्।
विश्राम्य त्रीन्दिवसान् निवेदितागमनहेतुभ्याम् ॥११४॥

सुपरीक्षा हृन्निर्वृतिकरीति सञ्चिन्त्य दत्तवान् सूरिः ।
साधयितुं विद्ये द्वे हीनाधिकवर्णसंयुक्ते ॥११५॥

अन्वयार्थ—(आदरात्) बडे आदर से (तयो.) उन दोनो मुनियो को (प्राघूर्णकोचितविधि विधाय) अतिथि के लिए उचित (योग्य) विधि करके (निवेदितागमन हेतुभ्याम्) प्रकट किया है, आगमन का जिन्होने ऐसे उन दोनो मुनियो के लिये (तीन दिवसान्) हेतु तीन दिनो तक विश्राम देकर (सुपरीक्षा) अच्छी तरह परीक्षा (हृन्निर्वृतिकरी) हृदय को आनन्द देने वाली है (इति) ऐसा (सञ्चित्य) सोचकर (सूरिः) आचार्य महाराज ने (हीनाधिक-वर्णसयुक्ते) हीन व अधिक वर्णों से संयुक्त (द्वे) दो (विद्ये) विद्यायें (साधयितु) सिद्ध करने के लिये (दत्तवान्) दी ।

अर्थ—बडे आदर से उन दोनो की अतिथियो के योग्य विधि करके अपने आगमन का हेतु निवेदन करने वाले उन दोनो मुनियो के लिये (अतिथियो के उचित) व्यवहार करके आदर पूर्वक तीन दिन तक विश्राम देकर अच्छी तरह से परीक्षा हृदय को आनन्द एवं सन्तोष लेने वाली होती है—ऐसा विचार कर हीन एव अधिक वर्णों से युक्त दो विद्यायें (मन्त्र) सिद्ध करने को उन आचार्य-वर्य ने दी ।

श्रीमन्नेमिजिनेश्वरसिद्धिशिलायां विधानतो विद्या-
संसाधनं विदधतोस्तयोश्च पुरतः स्थिते देव्यौ ॥११६॥

अवयार्थ—(श्रीमन्नेमिजिनेश्वर सिद्धि शिलाया) भगवान् श्री नेमिनाथ ने जिस शिलापर ध्यानारूढ होकर मुक्ति पाई थी उसी शिला पर (विधानतः) विधिपूर्वक (विद्या ससाधन विद-धतो) विद्या की सिद्धि मे तत्परता से सलग्न (तयोः) उन दोनों

मुनियो के (पुरत) सामने (देव्यौ) दो देवियां (स्थिते) उपस्थित हुईं।

अर्थ—(भगवान श्री नेमिनाथ के ध्यान मे मग्न हो कर जिस शिला से सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की थी उसी शिलापर विधि पूर्वक विद्या (मत्र) सिद्ध करते हुए उन मुनीश्वरो के सामने दो विद्यायें उपस्थित हुईं)

हीनाक्षरविद्यासाधकस्य देव्येकलोचनाग्रेऽस्थात् ।
अधिकाक्षरविद्यासाधकस्य सा दन्तुरा तस्थौ ॥११७॥

अन्वयार्थ—(हीनाक्षर विद्या साधकस्य) हीन अक्षर वाले मत्र साधक के (अग्रे) आगे (एकलोचना देवी) एक आँख वाली देवी (अस्थात्) उपस्थित हो गई। (अधिकाक्षर साधकस्य) अधिक अक्षर वाले मत्र साधक के आगे (सा) वह देवी (दन्तुरा) लम्बे-लम्बे दाँतो वाली उपस्थित हुई।

अर्थ—जिन मुनिराज ने हीन अक्षर वाले मत्र की आराधना की थी, उनके सामने सिद्ध देवी एक नेत्रवाली प्रकट हुई। जिन मुनिराज ने अधिकाक्षर युक्त मत्र सिद्ध किया था उनके सामने लम्बे-लम्बे दाँतो वाली देवी प्रकट हुई।

दृष्ट्वा ताविति देव्यौ न देवतानां स्वभाव एष इति ।
प्रविचिन्त्य ततो विद्यामंत्रव्याकरणविधिनैव ॥११८॥
प्रस्तार्य न्यूनाधिकवर्णक्षेपापचयविधानेन ।
पुनरपि पुरतश्च तयोर्देव्यौ ते दिव्यरूपेण ॥११९॥
केयूरहारनूपुरकटककटीसूत्रभासुरशरीरे ।
अग्रे स्थित्वा वदतां किं करणीयं प्रवदतेति ॥१२०॥

अन्वयार्थ—(तौ) वे दोनो मुनि (देव्यौ इति दृष्ट्वा) उन देवियो को इस तरह (विकृत) देखकर (देवताना एष) देवताओ का यह (स्वभाव न) स्वभाव-स्वरूप नही है (इति प्रविचिन्त्य) ऐसा सोचकर (विद्या मंत्र) उन विद्या मंत्रो को (व्याकरण विधिना) व्याकरण की विधि से (प्रस्तार्य) प्रस्तुत करके (न्यूनाधिकवर्णक्षेपापचय विधानेन) न्यून वर्ण वाले मत्र मे उचित रीति से जोडकर तथा अधिक वर्ण वाले मंत्र मे से उचित वर्ण हटाकर आराधना करने से (पुनरपि) फिर से (तयो पुरत) उनके सामने (ते देव्यौ) वे दोनो देवियाँ (दिव्य रूपेण) दिव्य रूप लेकर (केयूरहारनूपुर कटक कटीसूत्र भासुर शरीरे) केयूर, हार, नूपुर, कटक तथा कटिसूत्र से शोभायमान शरीर वाली (अग्रे स्थित्वा) आगे खडो होकर (वदता) बोली (किं करणीय) हमे क्या करना है (प्रवदत इति) बोलिये (इति) ऐसा बोलो ।

अर्थ—वे दानो मुनिराज उन उपस्थित हुई विकृत शरीर वाली देवियो को देखकर, यह देवताओ का स्वरूप नही है—ऐसा सोचकर उन विद्यामत्रो को व्याकरण विधि से शोधकर न्यून वर्ण वाले मत्र में उचित वर्ण-मात्रादि जोडकर तथा अधिक वर्णादि वाले मत्र मे से उचित वर्ण-मात्रा हटाकर शुद्ध विधि से आराधना की । अत फिर से वे देवियाँ उनके सामने दिव्य रूप मे केयूर (कडा) हार, नूपुर, कटक, कटिसूत्र से सुन्दर शरीर वाली उनके सामने उपस्थित होकर—बोलिये हमे क्या करना है—ऐसी बोली ।

तावप्यूचतुरेतन्नास्माकं कार्यमस्ति तत्किमपि ।
ऐहिकपारत्रिकयोर्भवतीभ्यां सिध्यति यदत्र परम् ॥१२१॥
किन्तु गुरुनियोगादावाभ्यां विहितमेतदिति वचनम् ।
श्रुत्वा तयोरभीष्टं ते जग्मतुः स्वास्पदं देव्यौ ॥१२२॥

अवन्यार्थ-- (तौ अपि ऊचतु) वे दोनो मुनिराज भी बोले— (अस्माक) हम लोगो के (किमपि कार्य न अस्ति) कोई भी कार्य नही है। (यद भवतीभ्या) जो आप दोनो द्वारा (ऐहिक पारित्र-कयो) इस लोक और परलोक सम्बन्धी (परम सिद्धयति) जो अच्छी तरह सिद्ध करना हो। किन्तु (गुरुनियोगात्) गुरु की आज्ञा से (आवाभ्या एतद् विहित) हम लोगो के द्वारा यह किया गया है (इति वचनं) ऐसे वचन (तयोरभीष्ट) उन दोनो के अभीष्ट वचन सुनकर (ते देव्यौ) वे देवियाँ (स्वास्पद) अपने स्थान को (जग्मतु) चली गईं।

अर्थ--वे दोनो मुनिराज (पुष्पदन्त-भूतवलि) बोले कि हमारा तो कोई भी कार्य नही है, न इस लोक सम्बन्धी न परलोक सम्बन्धी—जो आप लोगो के द्वारा सिद्ध होना हो। परन्तु गुरु के आदेश से ही हम लोगो ने मत्र द्वारा आपको सिद्ध किया है। उन मुनिराजो के इन अभीष्ट वचनो को सुनकर वे दोनो देवियाँ अपने-अपने स्थान को चली गयी।

विद्यासाधनमेवं विधाय तोषात्ततो गुरोः पार्श्वम्।
गत्वा तौ निजवृत्तान्तमवदतां तद्यथावृत्तम्॥१२३॥

अन्वयार्थ—(एवं विद्या साधन विधाय) इस प्रकार विद्या का साधन कर (ततो) तदनन्तर वे (तोषात्) बडी सन्तुष्टि पूर्वक (गुरो पार्श्वम् गत्वा) गुरु (धरसेनाचार्य) के पास जाकर (तौ) उन दोनो मुनिराजो ने (यथावृत्तम्) जैसा-जैसा हुआ, अपना समस्त वृत्तान्त गुरु के निकट (अवदताम्) कहा।

अर्थ—तदनन्तर भले प्रकार विद्या का साधन कर बडे सन्तोष-पूर्वक उन्होने गुरु धरसेनाचार्य के निकट जाकर यथा तथ्य (जैसा हुआ) समस्त वृत्तान्त प्रकट किया।

सोऽप्यतियोग्याविति सञ्चिन्त्य ततः सुप्रशस्ततिथिवेला ।
नक्षत्रेषु तयोर्व्याख्यातुं प्रारब्धवान् ग्रन्थम् ॥१२४॥

अन्वयार्थ— (सोऽपि) वह आचार्य धरसेन स्वामी भी (अति योग्यौ इति सञ्चिन्त्य) ये दोनो (पुष्पदन्त भूतबलि) मुनि अति योग्य हैं—ऐसा विचारकर (तत) तदनन्तर (सुप्रशस्त तिथि वेला नक्षत्रेषु) उत्तम तिथि, समय और नक्षत्र मे (तयोः) उन दोनो के निमित्त (ग्रन्थं) आगम शास्त्र की (व्याख्यातु) व्याख्या करना, (प्रारब्धवान्) प्रारम्भ किया ।

अर्थ—उन महाराज धरसेनाचार्य ने "ये दोनो अत्यन्त योग्य हैं"—ऐसा सोचकर उत्तम तिथि, मुहूर्त और नक्षत्र मे उन दोनो के लिए आगम ग्रन्थ का व्याख्यान शुरू किया—अर्थात् उन्हे द्वादशाङ्ग जिनवाणी, विशेषतया कर्म सिद्धान्त पढाना प्रारम्भ किया ।

ताभ्यामप्यध्ययनं कुर्वाणाभ्यामपास्ततन्द्राभ्याम् ।
परममविलङ्घ्यभ्यां गुरुविनयं ज्ञानविनयं च ॥१२५॥
दिवसेषु कियत्स्वपि गतेष्वथाषाढमासि सितपक्षे ।
एकादश्यां च तिथौ ग्रन्थसमाप्तिः कृता विधिना ॥१२६॥

अन्वयार्थ—(अपास्ततन्द्राभ्या) तन्द्रा (आलस्य) रहित होकर (अध्ययनं कुर्वाणाभ्या) अध्ययन करनेवाले गुरु की आज्ञा का उल्लघन न करने वाले तथा ज्ञान की विनय करनेवाले उन दोनो मुनियो द्वारा (कियत्सु दिवसेषु) कतिपय दिवस व्यतीत होने पर (आषाढ मासि) आषाढ के महीने मे (सित पक्षे) शुक्ल पक्ष मे (एकादश्या तिथौ) एकादशी की तिथि मे (विधिना) विधिपूर्वक (ग्रन्थसमाप्ति) ग्रन्थ की समाप्ति (कृता) की ।

अर्थ—आलस्य छोडकर, पूरी तरह सजग रहकर अध्ययन

करने वाले तथा साथ ही गुरु की विनय (आज्ञा) का उल्लघन न करनेवाले तथा ज्ञान की विनय का भी उल्लंघन न करने वाले उन दोनो (पुष्पदन्त भूतवलि) मुनिराजो द्वारा कितने ही दिन व्यतीत होने पर आषाढ मास के शुक्ल पक्ष मे एकादशी की तिथि मे विधिपूर्वक अध्ययन करते हुए आगम ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त किया गया।

तद्दिन एवैकस्य द्विजपंक्ति विषमितामपास्य सुरैः ।
कृत्वा कुन्दोपमितां नाम कृतं पुष्पदन्त इति ॥१२७॥

अन्वयार्थ—(सुरैः) देवो द्वारा (एकस्य) एक की (तद्दिन एव) उसी दिन ही (विषमिता) विषमिता को प्राप्त (द्विज पक्ति) दाँतो की पक्ति को (अपास्य) दूर कर (कुन्दोपमिता कृत्वा) कुन्द के समान सरल और धवल करके (पुष्पदन्त इति) पुष्पदन्त यह नाम (कृतम्) नाम किया ।

अर्थ—देवो द्वारा उसी दिन ही एक मुनिराज की विषम दन्तावलि को सम, सुन्दर और धवल करके पुष्पदन्त का यश नाम किया।

अपरोऽपि तुर्यनादैर्जयघोषैर्गन्धमाल्यधूपाद्यैः ।
भूतपतिरेष इत्याहूतो भूतैर्महं कृत्वा ॥१२८॥

अन्वयार्थ—(अपरोऽपि) दूसरे मुनिराज भी (भूतै) देवो द्वारा (तूर्यनादै) तूर्यनादो द्वारा (जयघोषै) 'जय हो' की घोषणाओ द्वारा तथा (गन्धमाल्य धूपाद्यै) गन्धमाला धूपादिक द्वारा (मह कृत्वा) उत्सव करके (एष भूतपति.) यह भूतपति हैं (इति आहूत) इस प्रकार पुकारे गये ।

अर्थ—दूसरे मुनिराज भी भूतजाति के देवो द्वारा तुरही वादन द्वारा, जय-जय की घोषणाओ द्वारा तथा सुगन्धित मालाओ

घूपो द्वारा उत्सव समायोजित करके यह 'भूतपति' है इस प्रकार पुकारे गये)।

स्वासन्नमृतिं ज्ञात्वा मा भूत्संक्लेशमेतयोरस्मिन् ।
इति गुरुणा सञ्चिन्त्य द्वितीयदिवसे ततस्तेन ॥१२९॥
प्रियहितवचनैरमुष्य तावुभावेव कुरीश्वरं प्रहितौ ।
तावपि नवभिदिवसै गत्वा तत्पत्तनमवाप्य ॥१३०॥
योगं प्रगृह्य तत्राषाढे मास्यसितपक्षपञ्चम्याम् ।
वर्षाकाल कृत्वा विहरन्तौ दक्षिणाभिमुखं ॥१३१॥
जग्मतुरथ करहाटे तयोः स यः पुष्पदन्तनाममुनिः ।
जिनपालिताभिधानं दृष्ट्वाऽसौ भागिनेयं स्वम् ॥१३२॥
दत्वा दीक्षां तस्मै तेन समं देशमेत्य वनवासम् ।
तस्थौ भूतबलिरपि मथुरायां द्रविडदेशेऽस्थात् ॥१३३॥

अन्वयार्थ—(तेन गुरुणा) उन गुरु धरसेनाचार्य द्वारा (द्वितीय दिवसे) किसी अन्य दिन (स्वासन्नमृतिं ज्ञात्वा) अपनी निकट मृत्यु को जानकर (अस्मिन्) इस स्थान पर (एतयो) इन दोनो शिष्यो को (सक्लेश मा भूत्) संक्लेश नही हो (मेरी मृत्यु का विषाद नही हो) (इति सञ्चित्य) ऐसा सोचकर (अमुष्य) इस स्थान से (प्रियहित वचनै) प्रिय और हितकारी वचनो के द्वारा (तौ उभौ एव) वे दोनो (पुष्पदन्त एव भूतबलि) (कुरीश्वर) कुरीश्वर नामक स्थान (नगर) को भेज दिये गये अर्थात् प्रस्थान करा दिये गये। (तौ अपि) वे दोनो भी (गत्वा) चलकर (नवभि. दिवसै) नौ दिनो मे (तत् पत्तन अवाप्य) उस नगर को प्राप्त कर (तत्र) वहाँ (उस कुरीश्वर नामक नगर मे, (आषाढे मासि) आषाढ महीने मे (असित पक्ष पञ्चम्या) कृष्ण पक्ष की

पञ्चमी[1] को (योग प्रगृह्य) योग ग्रहण करके (वर्षाकाल कृत्वा) वर्षा काल के चातुर्मास विताकर (दक्षिणाभि मुख) दक्षिण की ओर (विहरन्तौ) विहार करते हुए (अथ करहारे जग्मतु) अनन्तर करहार नगर को गये (तयो) उन दोनो मुनियो मे (य. पुष्पदन्त-नाम मुनि) पुष्पदन्त नामक मुनि थे (स) वह (जिनपालिताभिधान) जिनपालित नामक (स्व भागिनेयम्) अपने भानजे (भगिनीपुत्र) को (दृष्ट्वा) देखकर (तस्मै) उसके लिये (दीक्षा) दीक्षा (दत्वा) देकर (तेन सम) उसके साथ (वनवास देश एत्य) वनवास देश मे पहुँच कर (तस्थौ) ठहर गये। (भूतवलिरपि) भूतवलि मुनिराज भी (द्रविड देशे) द्रविड देश मे (स्थिर) (मथुराया) मथुरा नगरी मे (आधुनिक नाम मदुरै) (अस्थात्) ठहर गये।

अर्थ—इसके अनन्तर उन आचार्य धरसेन ने अपनी मृत्यु को निकट जानकर यहाँ रहने से इन्हे मेरी मृत्यु का विषाद न हो—ऐसा सोचकर एक दिन प्रिय और हितकारी वचनो से उन्हे समझाकर उन दोनो (पुष्पदन्त एव भूतवलि) को कुरीश्वर नामक स्थान की ओर भेजा और वे नौ दिनो तक अनवरत चलकर उस नगर को पहुँचे, वहाँ आषाढ महीने के कृष्ण पक्ष की पञ्चमी को योग धारण कर वर्षा काल वही विताकर दक्षिण की ओर विहार करते हुए करहार देश गये। उनमे जो पुष्पदन्त मुनिराज थे उन्होने जिनपालित नामक अपने भानजे को देखकर उसे दीक्षित किया और उसके साथ वनवास देश जाकर ठहर गये। भूतवलि मुनि भी द्रविड देशस्थ मथुरा नगरी जिसे आज कल 'मदुरै' कहा जाता है वहाँ ठहर गये।

नोट—१२८वें पद मे पुष्पदन्त मुनिराज के साथी मुनिराज का

१ गुजराती मान्यतानुसार आषाढ़ कृष्णा पंचमी वही सिद्धान्तानुसार आषाढ कृष्णा पचमी है।

नाम भूतो ने भूतपति दिया था पर यहाँ १३३वें श्लोक मे भूतबलि शास्त्र-प्रचलित नाम ही आ गया है। इसका अर्थ भी भूत-पूजित है।

अथ पुष्पदन्तमुनिरप्यध्यापयितुं स्वभागिनेयं तम्।
कर्मप्राकृतिप्राभृतमुपसहार्यैव षड्भिरिह खण्डैः ॥१३४॥
वांच्छन् गुणजीवादिकविंशतिविधसूत्रसत्प्ररूपणया।
युक्तं जीवस्थानाद्यधिकारं व्यरचयत्सम्यक् ॥ १३५ ॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (पुष्पदन्त मुनिरपि) पुष्पदन्त मुनि भी (त) उस (स्वभागिनेय) अपने भगिनी पुत्र को (अध्यापयितु) पढाने के लिए (षड्भि खण्डै) छह खण्डो के द्वारा (इह) यहाँ (गुणजोवादिकविंशतिविधसूत्रसत्प्ररूपणया) गुणस्थान, जोवस्थान आदिक बीस प्रकार की सत्प्ररूपणाओ से युक्त, (कर्मप्राकृतिक प्राभृत) कर्मप्रकृति प्राभृत (उपसहार्य एव) कर्म प्रकृति प्राभृत का उपसंहार करके (सचय करके) (जीवस्थानादि अधिकार वाञ्छन्) जीवस्थान आदि अधिकारो की इच्छा करते हुए, (सम्यक्) सम्यक् प्रकार (व्यरचयत्) रचना की।

अर्थ—तदनन्तर श्री पुष्पदन्त मुनिराज ने अपने उस भागिनेय जिनपालित को पढाने के लिए इस करहाट नगर मे छह खण्डों के द्वारा गुणस्थान, जोवस्थान आदि बीस प्रकार की सत्प्ररूपणा से युक्त कर्मप्रभृतियों से युक्त प्रकरण का संक्षेप कर सम्यकुरीति से जीवस्थानादि अधिकार की रचना की।

सूत्राणि तानि शतमध्याप्य ततो भूतबलिगुरोः पार्श्वम्।
तदभिप्रायं ज्ञातुं प्रस्थापयदगमदेषोऽपि ॥१३६।

अन्वयार्थ—(तानि) उन (शत सूत्राणि) सौ सूत्रो को पढाकर (ततो) तदनन्तर (भूतबलि गुरोः पार्श्वं) भूतबलि गुरु के

निकट (तदभिप्रायं ज्ञातु) उसके अर्थ को जानने के लिए (प्रस्थापयत्) भेजा (एषोऽपि) यह जिनपालित भी (अगमत्) वहाँ गये (पहुँचे) ।

अर्थ—उन सौ सूत्रो को पढाकर अनन्तर भूतबलि गुरु के निकट उनका अर्थ जानने के लिए भेजा । वह जिनपालित भी शिष्यबुद्धि से उनके पास पहुँचे ।

तेन ततः परिपठितां भूतबलिः सत्प्ररूपणां श्रुत्वा ।
षट्खण्डागमरचनाभिप्रायं पुष्पदन्त गुरोः ॥१३७॥
विज्ञायाल्पायुष्यानल्पमतीन्मानवान् प्रतीत्य ततः ।
द्रव्यप्ररूपणाद्यधिकारः खण्डपञ्चकस्यान्वक् ॥१३८॥
सूत्राणि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ पूर्वसूत्रसहितानि ।
प्रविरचय महाबन्धाह्वयं ततः षष्टकं खण्डम् ॥१३९॥
त्रिंशत्सहस्रसूत्रग्रन्थं व्यरचयदसौ महात्मा ।
तेषां पञ्चानामपि खण्डानां शृणुत नामानि ॥१४०॥

अन्वयार्थ—(तत.) अनन्तर (तेन) उन पुष्पदन्त शिष्य जिनपालित द्वारा (परिपठिता) पढी गई (सत्प्ररूपणा) सत्प्ररूपणा को सुनकर (पुष्पदन्त गुरोः) पुष्पदन्त गुरु के (षट्खण्डागम रचनाभिप्रायं) षट्खण्डागम की रचना के अभिप्राय को (विज्ञाय) जानकर (मानवान्) मानवो को (अल्पायुष्मान्) अल्प आयु से युक्त तथा (अल्पमतीन्) अल्पबुद्धि से युक्त (प्रतीत्य) जानकर (द्रव्यप्ररूपणाधिकारं) द्रव्यप्ररूपणाधिकार को (अन्वक्) पीछे (खण्डपञ्चकस्य) पांच खण्डो के बाद (पूर्वसूत्रसहितानि) पुष्पदन्त गुरु द्वारा रचित सूत्रो सहित (ग्रन्थस्य षट्सहस्र सूत्राणि) ग्रन्थ के छह हजार सूत्रो को (प्रविरच्य) रचकर (त्रिंशत्सहस्रसूत्र

ग्रन्थ) तीस हजार सूत्रो की ग्रन्थनपूर्वक (षष्ठक) छठे (महा-बन्धाह्वय) महावन्ध नामक (असौ महात्मा) महा महिमाधारी इन महात्मा भूतवलि ने (व्यरचयत्) रचा अर्थात् बनाया।

नोट—(१३९वें) श्लोक का प्रथम चरण—ग्रन्थस्य षट्सहस्र सत्राणमथ होना उपयुक्त लगता है।

अर्थ—इसके अनन्तर महात्मा भूतवलि ने उन पुष्पदन्त आचार्य के शिष्य जिनपालित द्वारा पढी गई सत्प्ररूपणा को सुनकर जिनवाणी के पिपासु भव्य जीवो को अल्प आयु तथा अल्पबुद्धि का जानकर तथा पुष्पदन्त गुरु के षट्खण्डागम की रचना के अभिप्राय को जानकर द्रव्यप्ररूपणाधिकार के बाद पुष्पदन्त गुरु द्वारा लिखित जिनपालित द्वारा सुनाये गये सौ सत्रो सहित ६ हजार सूत्र प्रमाण ग्रन्थ की रचना कर तीस हजार सूत्रो के ग्रथनपूर्वक छठे महावन्ध नामक ग्रन्थ को बनाया उन पांचो खण्डो के नाम कहते हैं सो सुनिये।

आद्यं जीवस्थानं क्षुल्लकबन्धाह्वयं द्वितीयमतः।
बन्धस्वामित्वं भाववेदनावर्गणाखण्डे ॥१४१॥

अन्वयार्थ—(आद्य) पहला (जीवस्थान) जीवस्थान (अतः द्वितीय) इसके अनन्तर दूसरा (क्षुल्लक बन्धाह्वय) क्षुल्लकबन्ध (खुद्दाबन्ध) नामका, (बन्धस्वामित्वं) तीसरा बन्ध स्वामित्व (अनन्तर) (भाववेदनावर्गणाखण्डे) वेदना तथा वर्गणा खण्ड।

अर्थ—इनमे पहला जीवस्थान, दूसरा क्षुल्लक बन्ध, तीसरा बन्ध स्वामित्व, चौथा वेदना खण्ड तथा पांचवां-वर्गणा खण्ड थे।

एवं षट्खण्डागमरचनां प्रविधाय भूतवल्यार्यः।
आरोप्यासद्भावस्थापनया पुस्तकेषु ततः ॥१४२॥

ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः ।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥१४३॥

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (भूतवल्यार्यः) भूतवलि महाराज ने (षट्खण्डागम रचना) षट्खण्डागम की रचना को (प्रविधाय) करके (तत) अनन्तर (असद्भाव स्थापनया) असद्भाव स्थापना द्वारा (पुस्तकेषु) पुस्तको मे (आरोप्य) आरोपण करके, (ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्या) ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी के दिन (चातुवर्ण्यसघसमवेतः) मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका रूप चातुर्वण्य सघ से युक्त हुआ (तत्पुस्तकोपकरणै·) उन पुस्तको के उपकरणो द्वारा (क्रियापूर्वक) विधिपूर्वक (पूजा) पूजा (व्यधात्) की ।

अर्थ—इस प्रकार भूतवलि महाराज ने षट्खण्डागम ग्रन्थ की रचना की । अनन्तर असद्भाव स्थापना से पुस्तको मे आरूढ कर चातुवर्ण्य सघ की (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) सन्निधि मे ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी के दिन पुस्तक रूप उपकरणो द्वारा विधिपूर्वक पूजा की ।

श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप ।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥१४४॥

अन्वयार्थ—(तेन) उस कारण से (इय तिथि) यह तिथि, (श्रुत पञ्चमीति) श्रुतपञ्चमी इस रूप मे (परा प्रख्याति) उत्कृष्ट ख्याति को आप प्राप्त हुई (अद्यापि) आज भी (जैना) जैन लोग (येन) जिस कारण से (श्रुतपूजा) श्रुतपूजा (कुर्वते) करते हैं ।

अर्थ—उस कारण यह ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमो की तिथि श्रुत पञ्चमी के नाम से पर्व के रूप मे अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुई जिसके

कारण जैन समुदाय आज भी इस दिन श्रुतज्ञान की पूजा करते हैं।

जिनपालितं ततस्तं भूतवलिः पुष्पदन्तगुरुपार्श्वम् ।
षट्खण्डान्यप्यध्यगमयत्तत्पुस्तकसमेतम् ॥१४५॥

अन्वयार्थ—(तत.) तदनन्तर (भूतबलि) भूतवलि महाराज ने (त जिनपालित) उन जिनपालित को (पुष्पदन्तगुरुपार्श्वम्) पुष्पदन्त गुरु के निकट (एतत् तत् पुस्तकम्) यह वह षट्खण्डागम नामक पुस्तक (अध्यगमयत्) भेजी ।

अर्थ—तदनन्तर भूतबलि महाराज ने उस जिनपालित से पुष्पदन्त गुरु के निकट षट्खण्डागम नामक यह पुस्तक भिजवाई ।

अथ पुष्पदन्तगुरुरपि जिनपालितहस्तसंस्थितमुदीक्ष्य ।
षट्खण्डागमपुस्तकमहो मया चिन्तितं कार्यम् ॥१४६॥
सम्पन्नमिति समस्तांगोत्पन्नमहाश्रुतानुरागभरः ।
चातुर्वर्ण्यसुसंघान्वितो विहितवान् क्रियाकर्म ॥१४७॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनन्तर (पुष्पदन्तगुरुरपि) पुष्पदन्त गुरु ने भी (जिनपालितहस्तसस्थितम्) जिनपालित के हाथ मे स्थित (षट्खण्डागम पुस्तक) षट्खण्डागम नामक ग्रन्थ को (उदीक्ष्य) अच्छी तरह देखकर (अहो मया चिन्तित कार्य सम्पन्न) 'अरे मेरे द्वारा सोचा गया कार्य हो गया है' (इति) इस प्रकार (समस्तागोत्पन्नमहामतानुरागभर) समस्त अगो मे उत्पन्न जो महान् श्रुतानुराग उससे भरा हुआ (चातुर्वर्ण्यसघान्वित) चातुर्वर्ण्य सघ से युक्त हुआ (क्रिया-कर्म) कृतिकर्म (पूजा कार्य) (विहितवान्) किया ।

अर्थ—तदनन्तर पुष्पदन्त गुरु ने भी जिनपालित के हाथ मे सुस्थित षट्खण्डागम ग्रन्थ को भले प्रकार से देखकर आश्चर्य मे

पडते हुए—"अरे ! मेरे द्वारा विचारा गया कार्य सम्पन्न हो गया" कहकर समस्त अगो मे उल्लास से भरकर चातुर्वर्ण्य—मुनि आर्यिका श्रावक-श्राविका रूप सघ से युक्त होकर पूजा की।

गन्धाक्षतमाल्याम्बरवितानघण्टाध्वजादिभिः प्राग्वत् ।
श्रुतपञ्चम्यामकरोत्सिद्धान्तसुपुस्तकमहेज्याम् ॥१४८॥

अन्वयार्थ—(अनन्तर पुष्पदन्ताचार्य ने) (प्राग्वत्) पहले की भाँति अर्थात् जैसी सिद्धान्त पूजा भूतवलि आचार्य ने की थी उसी तरह (गन्धाक्षतमाल्याम्बरवितानघण्टाध्वजादिभिः) गन्ध, अक्षत, माला, वस्त्र, चन्दोवा, घण्टा आदि के द्वारा (श्रुतपञ्चम्या) श्रुतपञ्चमी के दिन (सिद्धान्तसुपुस्तकमहेज्याम्) सिद्धान्त महागम की पूजा (अकरोत्) की।

अर्थ—उस पुष्पदन्ताचार्य ने भी भूतबलि आचार्य की भाँति श्रुतपञ्चमी के ही दिन उस सिद्धान्त षट्खण्डागम की बडे विधि-विधान से अति उत्साहपूर्वक पूजा की।

एवं षट्खण्डागमसूत्रोत्पत्तिं प्ररूप्य पुनरधुना ।
कथयामि कषायप्राभृतस्य सत्सूत्रसम्भूतिम् ॥१४९॥

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार (षट्खण्डागमसूत्रोत्पत्ति) षट्खण्डागम सूत्र की उत्पत्ति का (प्ररूप्य) प्ररूपण करके (पुन) अधुना फिर इस समय (कषायप्राभृतस्य सत्सूत्र सम्भूति) कषाय-प्राभृत सत्सूत्र की उत्पत्ति को (कथयामि) कहता हूँ।

अर्थ—इस प्रकार षट्खण्डागम सूत्र की उत्पत्ति का प्ररूपण करके फिर इस समय कषायप्राभृत सूत्र की उत्पत्ति कहता हूँ—यह ग्रन्थकार इन्द्रनन्दी की प्रतिज्ञा है।

ज्ञानप्रवादसंज्ञकपञ्चमपूर्वस्थदशमवस्तुतृतीय ।
प्रायोदोषप्राभृतज्ञोऽभूद् गुणधरमुनीन्द्रः ।।१५०।।

अन्वयार्थ— (ज्ञानप्रवादसञ्ज्ञकपञ्चमपूर्वस्थदशमवस्तुतृतीय) (प्रायोदोस प्राभृतज्ञ' गुणधर मुनीन्द्र. अभूत) ।

अर्थ—ज्ञानप्रवाद नामक पञ्चम पूर्व की दशम वस्तु के तृतीय प्रायोदोष (पेज्ज दोस) प्राभृत को जाननेवाले गुणधर मुनीन्द्र हुए ।

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः ।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ।।१५१।।

अन्वयार्थ—(गुणधरधरसेनान्वयगुर्वो पूर्वापर क्रमः) गुणधर (पेज्ज दोस प्राभृत-कषायपाहुड के कर्ता) तथा धरसेन (पुष्पदन्त भूतवलि आचार्य के सिद्धान्त ज्ञान गुरु) के कुल गुरुओ (दीक्षा गुरुओ) का पूर्वापर क्रम (अस्माभि) (हम इन्द्रनन्दि आदि द्वारा) (तदन्वय कथकागम मुनिजना भावात्) उनके गुरुवश को कहने वाले आगम एवं मुनिजनो का अभाव होने से (न ज्ञायते) नहीं जाना जाता है ।

अर्थ—श्री इन्द्रनन्दि जो इस श्रुतावतार के कर्ता हैं । कहते हैं कि—पेज्जदोस अपर नाम 'कषाय पाहुड़' ग्रन्थ के कर्ता आचार्य गुणधर एव पुष्पदन्त-भूतबलि मुनिराजो को सिद्धान्त शास्त्र का ज्ञान देने वाले तथा 'योनिपाहुड' ग्रन्थ के कर्ता महा मर्मज्ञ आचार्य धरसेन स्वामी के परम्परा गुरुओं का पूर्वापर क्रम हमे उनकी गुरु परम्परा को कहने वाले आगम एव मुनिजनो के अभाव के कारण अज्ञात है ।

अथ गुणधरमुनिनाथः सकषायप्राभृतान्वयं तत्प्रायो- ।
दोषप्राभृतकापरसज्ञां साम्प्रतिकशक्तिमपेक्ष्य ।।१५२।।

त्र्यधिकाशीत्या युक्तं शतं च मूलसूत्रगाथानाम् ।
विवरणगाथानां च त्र्यधिकं पञ्चाशतकमकार्षीत् ॥१५३॥
एवं गाथासूत्राणि पञ्चदशमहाधिकाराणि ।
प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम् ॥१५४॥

अन्वयार्थ—(अथ) अनन्तर (गुणधर मुनिनाथ) गुणधर मुनिराज (सकषायप्राभृतान्वय) कषाय प्राभृत नामक (तत्प्रायोदोष प्राभृतापरसञ्ज्ञा) प्रायोदोष प्राभृत इस दूसरे नाम वाले ग्रन्थ को (साम्प्रतिकशक्तिमपेक्ष्य) अपनी [दैहिक] वर्तमान कालीन शक्ति को देखकर (त्र्यधिकाशीत्या युक्त) तीन अधिक अस्सी तेरासी ऊपर (शतमूलसूत्रगाथाना) सौ मूलगाथा सूत्रो के अर्थात् एक सौ तेरासी गाथा सूत्रो से युक्त (एव च विवरण गाथाना त्र्यधिक पञ्चाशतकम्) तथा विवरण गाथाओ का तीन अधिक पचास अर्थात् (५३) त्रेपन (अकार्षीत्) किया । (एव) इस प्रकार (पञ्चदश महाधिकाराणि) पन्द्रह अधिकारो मे गाथा सूत्रो को (प्रविरच्य) बनाकर (स) उन गुणधराचार्य ने उस पेज्जदोस पाहुडको (नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम्) नागहस्ति तथा आर्यमंक्षु के लिये (व्याचख्यौ) व्याख्यान किया ।

अर्थ—इसके अनन्तर उन गुणधर मुनीन्द्र ने कषाय प्राभृत नामक जिसका दूसरा नाम पेज्जदोस पाहुड प्रायो दोष प्राभृत था अपनी सम्प्रति कालीन (दैहिक) शक्ति को देखकर एकसौ मूल गाथा सूत्रों से युक्त तथा त्रेपन वृत्ति गाथाओ से युक्त ग्रन्थ को रचना की जिसमे कि कुल पद्रह महाधिकार थे । इसे रचकर फिर अपने शिष्य नागहस्ति और आर्यमंक्षु को उसका विशद व्याख्यान किया ।

पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः ।
यतिवृषभनामधेयो बभूव शास्त्रार्थनिपुणमतिः ॥१५५॥

अन्वयार्थ—(तयोर्द्वयोरपि) उन दोनो नागहस्ति एव आर्यमक्षु के (पार्श्वे) निकट में (तानि सूत्राणि अधीत्य) उन गाथा सूत्रो को पढकर (यतिवृषभ॰) यतियो मे श्रेष्ठ (यतिवृषभनामधेय) यतिवृषभ नामक मुनि (शास्त्रार्थ निपुणमति॰) शास्त्रो के अर्थ मे निपुण बुद्धि (बभूव) हो गये ।

अर्थ—आचार्य गुणधर से उनके शिष्य नागहस्ति और आर्यमक्षु ने कसाययाहुड सुत्त का विशद व्याख्यान पूर्ण प्राप्त किया । और इन दोनो के सान्धिय मे बैठकर यतियो मे श्रेष्ठ यतिवृषभ नामक मुनि ने इस आगम शास्त्र के गाथा सूत्रो के अर्थ मे निपुणता प्राप्त की ।

तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण ।
रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि ॥१५६॥

अन्वयार्थ—(अथ) (तेन यतिपतिना) उस यतिवृषभ नामक यतिपति द्वारा (तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण) उन गाथा की वृत्ति रूप सूत्रो द्वारा (षट्सहस्रग्रन्थानि चूर्णिसूत्राणि) छह हजार श्लोक प्रमाण पर चूर्णि सूत्रों की (रचितानि) रचना की गई ।

अर्थ—इसके अनन्तर उन यतिश्रेष्ठ यतिवृषभ द्वारा गाथाओ की वृत्ति के सूत्र रूप मे छह हजार गाथा (श्लोक) प्रमाण सूत्रो को चर्णि सूत्रो के रूप मे रचा गया ।

तस्यान्ते पुनरुच्चारणादिकाचार्यसंज्ञकेन ततः ।
सूत्राणि तानि सम्यगधीत्य ग्रन्थार्थरूपेण ॥१५७॥
द्वादशगुणितसहस्रग्रन्थान्युच्चारणाख्यसूत्राणि ।
रचितानि वृत्तिरूपेण तेन तच्चूर्णिसूत्राणाम् ॥१५८॥

अन्वयार्थ—(तस्यान्ते) उन यतिवृषभ आचार्य के निकट (पुन) फिर (उच्चारणादिक आचार्य सज्ञकेन) उच्चारण

नामक आचार्य आदि द्वारा (ग्रन्थार्थरूपेण) ग्रन्थ [गाथा] के अर्थ रूप मे (तानि सूत्राणि) वे सूत्र (सम्यक् अधीत्य) सम्यक् प्रकार पढकर (द्वादशगुणितसहस्रग्रन्थानि) द्वादश हजार गाथा वाले, (उच्चारणाख्यसूत्राणि) उच्चारणनामक सूत्रो को (तच्चूर्णि सूत्राणा) उन यतिवृषभाचार्य के चूर्णि सूत्रो की (वृत्तिरूपेण) व्याख्यान रूप से (रचितानि) लिखे ।

अर्थ—उन यतिश्रेष्ठ यतिवृषभाचार्य के निकट उच्चारणाचार्य नामक मुनिराज ने गाथाओ के अर्थ रूप मे उन सूत्रो (गाथाओ) को भले प्रकार पढ़कर और उनका विशद अर्थ जानकर बारह हजार प्रमाण उन चूर्णिसूत्रो की व्याख्या मे अपने ही नाम से उनके व्याख्यान-विवृत्ति रूपसे उच्चारणा सूत्र बनाये ।

गाथाचूर्ण्युच्चारणसूत्रैरुपसंहृतं कषायाख्य ।
प्राभृतमेवं गुणधरयतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥१५९॥

अन्वयार्थ—(गाथाचूर्ण्युच्चारणसूत्रे) गाथा, चूर्णि एव उच्चारण सूत्र गाथा गुणधर रचित अर्थात् चूर्णि (यतिवृषभ-रचित) तथा उच्चारणा सूत्रो से (उच्चारणाचार्य रचित) (उपसहृत) समाहित (एव कषायाख्य प्राभृत) इस प्रकार कषाय-प्राभृत (गुणधर यतिवृषभोच्चारणाचार्यैः) गुणधराचार्य, यति-वृषभाचार्य एव उच्चारणा-चार्य विरचित है ।

अर्थ—इस प्रकार कषाय प्राभृत नामक आगम ग्रन्थ गाथा चूर्णि और उच्चारणासूत्रो से युक्त है । इनमे से आचार्य गुणधर द्वारा गाथा सूत्र, आचार्य यतिवृषभ द्वारा चूर्णि सूत्र तथा उच्चारणा-चार्य द्वारा उच्चारणा सूत्र रचे गये ।

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन् ।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कुण्डकुन्दपुरे ॥१६०॥

श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वादशसहस्रपरिणामः ।
ग्रन्थपरिकर्मकर्त्रा षटखण्डाद्यत्रिखण्डस्य ॥१६१॥

अन्वयार्थ--(एव) इसप्रकार (द्रव्यभावपुस्तकगतः द्विविध) द्रव्य और भाव पुस्तक गत दो प्रकार का (सिद्धान्त) सिद्धान्त (गुरुपरिपाट्या) गुरुपरम्परा से (समागच्छन्) आया हुआ (कुण्डकुन्दपुरे) कुण्ड कुन्दपुर मे (श्रीपद्मनन्दिमुनिना) पद्मनन्दी नाम के मुनि द्वारा (ज्ञात) जाना गया। (सोऽपि) उन पद्मनन्दी मुनिने भी (षट्खण्डाद्यत्रिखण्डस्य) षट्खण्डागम के आदि के तीन खण्डो का (द्वादशसहस्रपरिणाम) बारह हजार गाथा प्रमाण (परिकर्म ग्रन्थ) परिकर्म नामक ग्रन्थ को (अकरोत्) किया ।

विशेष (द्वादशसहस्रपरिमाण ग्रथ परिकर्ममकरोत्) ऐसी सम्कृत होना ठीक जंचता है ।

अर्थ—इस प्रकार द्रव्य, भाव रूप पुस्तक गत दो प्रकार का सिद्धान्त गुरु परिपाटी से कुण्डकुन्दपुर मे पदमनन्दी मुनि द्वारा (प्रचलितनाम आचार्य कुन्दकुन्द) द्वारा जाना गया। उन्होंने भी बारह हजार गाथा प्रमाण परिकर्म नामक टीका ग्रन्थ की रचना षट्खण्डागम के आदि के तीन खण्डो पर टीका या भाष्य रूप मे की ।

काले ततः कियत्यपि गते पुनः शामकुण्डसञ्ज्ञेन ।
आचार्येण ज्ञात्वा द्विभेदमप्यागमः कात्स्न्यात् ॥१६२॥
द्वादशगुणितसहस्र ग्रन्थं सिद्धान्तयोरुभयोः ।
षष्ठेन विना खण्डेन पृथुमहाबन्धसंज्ञेन ॥१६३॥
प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया पद्धतिः परा रचिता ।
तस्मादारात्पुनरपि काले गतवति कियत्यपि च ॥१६४॥

अथ तुम्बुलूरनामाऽचार्योऽभूत्तुम्बुलूरसद्ग्रामे ।
षष्ठेन विना खण्डेन सोऽपि सिद्धान्तयोरुभयोः ॥१६५॥
चतुरधिकाशीतिसहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम् ।
कर्णाटभाषयाऽकृत महतीं चूडामणि व्याख्याम् ॥१६६॥
सप्तसहस्रग्रन्थां षष्ठस्य च पञ्चिकां पुनरकार्षीत् ।

अन्वयार्थ—(तत) तदनन्तर (कियत्यपि काले गते) कितना ही समय व्यतीत होने पर (पुन) फिर (शामकुण्डसंज्ञेन) शामकुण्ड नामक (आचार्येण) आचार्य द्वारा (आगम) आगम (द्विभेदमपि) दोनो भेद रूप (षट्खण्डागम एव कषायपाहुड) (कात्स्न्यात्) पूरी तरह (ज्ञात्वा) जानकर (उभयो सिद्धान्तयोः) दोनो आगमों को (द्वादशसहस्रं गुणित ग्रन्थ) बारह हजार गाथाओ को (षष्ठेन खण्डेन विना) षट्खण्डागम के छठे वर्गणा खण्ड के अतिरिक्त—जिसका दूसरा नाम महाबन्ध है के अतिरिक्त (प्राकृतसस्कृतकर्णाट-भाषया) प्राकृत-सस्कृत एव कन्नड तीनो भाषाओ मे (परा पद्धतिः रचिता) उत्कृष्ट पद्धति चूर्णि और वृत्ति सूत्रो की पद विच्छेदक टीका बनाई गई (अथ) अनन्तर (तुम्बुलूर सद्ग्रामे) तुम्बुलूर नामक उत्तम ग्राम मे (तुम्बुलूरनामाचार्योऽभूत्) तुम्बुलूर नामक आचार्य हुए (सोऽपि) उन्होने भी (उभयो सिद्धान्तयो) दोनों आगम ग्रन्थो की छठे खण्ड के बिना (चतुराधकाशीतिसहस्रग्रन्थ-रचनया) चौरासी हजार गाथा प्रमाण रचना से (युक्ता) युक्त (कर्णाटभाषया) कन्नड भाषा मे (महती) विशाल (चूडामणि व्याख्याम्) चूडामणि नामक व्याख्या (अकृत) व्याख्या की । (च) तथा (षष्ठस्य) छठे वर्गणा खण्ड की (सप्तसहस्रग्रन्था) सात हजार गाथा प्रमाण (पञ्जिका) पञ्जिका नामक टीका (अकार्षीत्) की ।

अर्थ—कुछ समय व्यतीत होने पर शामकुण्ड नामक आचार्य

ने दोनो आगम ग्रन्थो-षट्खण्डागम व कसायपाहुड को पूरी तरह जानकर बारह हजार गाथाओ प्रमाण छठा खण्ड जो महाबन्ध है उसे छोडकर प्राकृत सस्कृत तथा कन्नड तीनो भाषाओ मे उत्कृष्ट 'पद्धति' नामक व्याख्या वृत्ति सूत्रो के विषम पदो का विश्लेषण कर समझाने वाली व्याख्या 'पद्धति' कहलाती है [वित्ति सुत्त विसमपदा भजिए विवरणाए पड्ढइ उपएसादो—जयधवल पु० पृष्ठ ५२] उनके कुछ काल निकट तुम्बलूरनामक सुन्दर ग्राम मे होने वाले तुम्बुलूर नामक आचार्य थे उन्होने भी दोनो सिद्धान्त ग्रन्थो [षट्-खण्डागम व कषायपाहुड] का षट् खण्डागम के छठे खण्ड को छोडकर चौरासी हजार गाथा प्रमाण रचना से युक्त कन्नड भाषा मे चूडामणि नामक एक विशाल टोका की । तथा षट्खण्डागम के षष्ठ महाबन्ध से प्रसिद्ध वर्गणा खण्ड पर सात हजार गाथाओ प्रमाण पञ्जिका (पञ्जिका) नामक टीका लिखी ।

कालान्तरे ततः पुनरासन्ध्यां पलरि (पलित) तार्किकार्कोऽभूत्
श्रीमान् समन्तभद्रस्वामीत्यथ सोऽप्यधीत्य तं द्विविधम् ।
सिद्धान्तमतः षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्य पुनः ॥१६८॥
अष्टौचत्वारिंशत्सहस्रसद्ग्रन्थरचनया युक्ताम् ।
विरचितवानतिसुन्दरमृदुसंस्कृतभाषया टीकाम् ॥१६९॥

अन्वयार्थ—(कालान्तरे) कुछ समय के पश्चात् (तत पुन.) फिर (पलित तार्किकाऽर्क.) वृद्ध तार्किक सूर्य श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी (इति) श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी इस नामवाले हुए (सोऽपि) उन्होने भी (आसध्या) अपनी जीवन की सध्या मे-वृद्धावस्था मे (तद्विविध) उन दोनो सिद्धान्तो को (अधीत्य) पढकर (षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्य) षट्खण्डागम के पाँच

खण्डो को (अष्टोचत्वारिंशत्सहस्रग्रन्थरचनया युक्ताम्) अडतालीस हजार गाथाओ प्रमाण रचना से युक्त (अतिसुन्दरमृदुसस्कृतभाषया) अत्यन्त सुन्दर मृदु सस्कृत भाषा से युक्त (टीका विरचितवान्) टीका वनाई।

अर्थ—इसके वाद कालान्तर मे वृद्ध तार्किक सूर्य श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी भी हुए उन्होने भी दोनों सिद्धान्त ग्रन्थो को पढकर षट्खण्डागम के पाँच खण्डो पर अडतालीस हजार गाथा प्रमाण अत्यन्त सुन्दर टीका लिखी जो अत्यन्त मृदु सस्कृत भाषा मे थी।

विलिखन् द्वितीयसिद्धान्तस्य व्याख्यां सधर्मणा स्वेन।
द्रव्यादिशुद्धिकरणप्रयत्नविरहात्प्रतिनिषिद्धम् ॥१७०॥

अन्वयार्थ—(द्वितीय सिद्धान्तस्य) दूसरे कषायपाहुड आगम सिद्धान्त की (व्याख्या विलिखन्) व्याख्या लिखते हुए (स्वेन सधर्मणा) अपने सहधर्मी द्वारा (द्रव्यादिशुद्धिकरणप्रयत्नविरहात्) द्रव्यादिक की शुद्धि करने के प्रयत्न से रहित होने के कारण (प्रतिनिषिद्धम्) निषेध कर दिये गये।

अर्थ—अनन्तर द्वितीय कषाय प्राभृत सिद्धान्त की टीका लिखने को उद्यत हुए समन्तभद्र स्वामी को उनके एक सहधर्मी ने द्रव्य शुद्धि आदि का विचार रखने के प्रयत्न रहित होने से निषेध कर दिया।

एवं व्याख्यानक्रममवाप्तवान् परमगुरुपरम्परया।
आगच्छन् सिद्धान्तो द्विविधोऽप्यतिनिशितबुद्धिभ्याम् ॥१७१
शुभरविनन्दिमुनिभ्यां भीमरथिकृष्णमेखयोः सरितोः।
मध्यमविषये रमणीयोत्कलिकाग्रामसामीप्यम् ॥१७२॥

विख्यातमगणवल्लीग्रामेऽथ विशेषरूपेण ।
श्रुत्वा तयोश्च पार्श्वे तमशेषं बप्पदेवगुरुः ॥१७३॥
अपनीय महाबन्धं षट्खण्डाच्छेषपञ्चखण्डे तु ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च षष्ठं खण्ड च तत् संक्षिप्य ॥१७४॥
षण्णां खण्डानामिति निष्पन्नानां तथा कषायाख्य-
प्राभृतकस्य च षष्ठिसहस्रग्रन्थप्रमाणयुताम् ॥१७५॥
व्यलिखत्प्राकृतभाषारूपां सम्यक्पुरातनव्याख्याम् ।
अष्टसहस्रग्रन्थां व्याख्यां पञ्चाधिकां महाबन्धे ॥१७६॥

अन्वयार्थ—(एव) इस तरह (गुरुपरम्परया आगच्छन्) गुरु परम्परा से आता हुआ (व्याख्यानक्रमम् अवाप्तवान्) व्याख्यान क्रम को प्राप्त हुआ (द्विविधोऽपि) दोनो प्रकार का (सिद्धान्त) सिद्धान्त (अतिनिशितबुद्धिभ्याम्) अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले (शुभ-रविनन्दिमुनिभ्याम्) शुभनन्दि एव रविनन्दि नामक मुनियो द्वारा (भीमरथिकृष्णमेखयो सरितो) भीमरथी तथा कृष्ण मेघ इन दोनो नदियो के (मध्यमविषये) मध्यवर्ती देश के मध्य मे (रमणीयोत्क-लिकाग्रामसामीप्यम्) सुन्दर उत्कलिका गाँव के निकट (विख्यात-मगणवल्लीग्रामे) प्रसिद्ध मगण वल्ली नामक गाँव मे (विशेषरूपेण) विशेष रूप से (श्रुत्वा) सुनकर (बप्पदेव गुरु) बप्पदेव गुरु ने (तयो पार्श्वे) उन दोनो मुनिराजो के निकट (तम् अशेष) उस सिद्धान्त को पूर्णरीति से जानकर (महाबन्धं अपनीय) महाबन्ध को छोडकर (षट्खण्डच्छेषपञ्चखण्डे) षटखण्डागम के शेष पांच खण्डो पर (व्याख्याप्रज्ञप्ति तत. षष्ठ खण्ड सक्षिप्य) व्याख्या प्रज्ञप्ति नामक टीका तथा छठे खण्ड को सक्षिप्त कर (षण्णा खण्डाना निष्पन्नाना) छहो खण्डो की व्याख्या निष्पन्न

होने के उपरान्त (कषायाख्य प्राभृतकस्य) कषाय नामक प्राभृत की (प्राकृतभाषारूपा) प्राकृत भाषामय (षष्ठिसहस्त्रग्रन्थप्रमाण युताम्) साठ हजार गाथा प्रमाण (पुरातनव्याख्या सम्यक् व्यलिखत्) पुरातन व्याख्या को पूर्वाचार्यों के क्रम को आगे बढाते हुए भले प्रकार लिखी (महाबन्धे च) तथा महाबन्ध (षट्खण्डागम के षष्ठ खण्ड) पर (पञ्चाधिका अष्टसहस्रा) पाँच अधिक आठ हजार श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी।

अर्थ—इस प्रकार व्याख्यान क्रम को प्राप्त गुरु परम्परा से आया हुआ दोनो प्रकार का सिद्धान्त अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले शुभनन्दि एव रविनन्दि गुरु से भीमरथि एव कृष्णमेघ नदियो के मध्यवर्ती रमणीय उत्कलिका गांव के निकट विख्यात मगण वल्ली नामक ग्राम मे सुनकर और उन्ही दोनो के निकट बैठकर वप्प देव गुरु (मुनि ने) पूरी तरह उसका अध्ययन कर महाबन्ध को छोड़ कर षट्खण्डागम के पांच खण्डो पर व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक टीका लिखी तथा षट्खण्डागम के महाबन्ध नामक षष्ठ खण्ड पर सक्षिप्त व्याख्या लिखी। षट्खण्डागम की व्याख्या निष्पन्न हो जाने पर साठ हजार गाथाओ प्रमाण कषाय प्राभृत की भी व्याख्या लिखी फिर महाबन्ध पर पुरातन व्याख्या का प्राकृत भाषा रूप पांच अधिक आठ हजार गाथा प्रमाण व्याख्या लिखी।

काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्त्वज्ञः ॥१७७॥

अन्वयार्थ—(कियत्यपि काले गते) कितना ही समय व्यतीत होने पर (तत पुन.) इसके बाद फिर (चित्रकूटपुरवासी) चित्रपुर मे रहने वाले (श्रीमान् एलाचार्यः) श्रीमान् एलाचार्य (सिद्धान्त-तत्वज्ञ.) सिद्धान्त तत्व को जानने वाले (बभूव) हुए।

अर्थ—कितना ही समय व्यतीत होने के अनन्तर चित्रकूटपुर निवासी श्रीमान् एलाचार्य सिद्धान्त तत्त्वो के ज्ञाता हुए।

तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारानष्ट च लिलेख ॥१७८॥

अन्वयार्थ—(तस्य समीपे) चित्रकूटपुर मे श्रीमान् एलाचार्य महाराज के पास (सकल सिद्धान्त अधीत्य) सम्पूर्ण सिद्धान्त पढ़कर (वीरसेन गुरु) वीरसेन गुरु (उपरितमनिबन्धनादि) ऊपर निबन्धन आदि (अष्ट अधिकारान्) अष्ट अधिकारो को (लिलेख) लिखा।

अर्थ—(उन चित्रकूटपुर मे निवास करने वाले श्रीमान् एलाचार्य के निकट सम्पूर्ण सिद्धान्तो को पढ़कर वीरसेन गुरु ने उपरितम निबन्धनादि आठ अधिकारो को लिखा।)

आगत्य चित्रकूटात्ततः स भगवान्गुरोरनुज्ञानात्।
वाटग्रामे चात्राऽऽनतेन्द्रकृतजिनगृहे स्थित्वा ॥१७९॥
व्याख्याप्रज्ञप्तिमवाप्य पूर्वषट्खण्डतस्ततस्तस्मिन्।
उपरितमबन्धनाद्यधिकारैरष्टादशविकल्पैः ॥१८०॥
सत्कर्मनामधेयं षष्ठं खण्ड विधाय संक्षिप्य।
इति षण्णां खण्डानां ग्रन्थसहस्रैर्द्विसप्तत्या ॥१८१॥
प्राकृतसंस्कृतभाषामिश्रां टीकां विलिख्य धवलाख्याम्।
जयधवलां च कषायप्राभृतके चतसृणां विभक्तीनाम् ॥१८२
विंशतिसहस्रसद्ग्रन्थरचनया संयुतां विरच्य दिवम्।
यातस्ततः पुनस्तच्छिष्यो जयसेनगुरुनामा ॥१८३॥

तच्छेषं चत्वारिंशता सहस्रैः समापितवान् ।
जयधवलैवं षष्ठिसहस्रग्रन्थोऽभवट्टीका ॥१८४॥

अन्वयार्थ—(तत. स भगवान्) तदनन्तर वह भगवान वीरसेन आचार्य (गुरोरनुज्ञानात्) गुरु की आज्ञा से (चित्रकूटात् आगत्य) चित्रकूटपुर से आकर (वाटग्रामे) वाटग्राम मे (अत्र) यहाँ (आनतेन्द्रकृतजिनगृहे) आनतेन्द्र द्वारा निर्मित जिनेन्द्र भगवान् के मन्दिर मे (स्थित्वा) रहकर (तस्मिन्) उसमे (व्याख्याप्रज्ञप्तिम् अवाप्य) व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक टीका को प्राप्त कर (पूर्वषट् खण्डत.) पूर्व षट्खण्ड से (उपरितमबन्धनादि अष्टादश विकल्पै अधिकारै) उपरितम बन्धनादि अठारह अधिकारो द्वारा (सत्कर्मनामधेय) सत्कर्म नामक तथा (षष्ठ खण्ड) छठवें खण्ड को (सक्षिप्य) सक्षेप करके (इति) इस प्रकार (षण्णा खण्डाना) छहो खण्डो की (द्विसप्तत्या) बहत्तर हजार (ग्रन्थ सहस्रै) गाथा प्रमाण (प्राकृत सस्कृत भाषा मिश्रा) प्राकृत सस्कृत मिश्र भाषा रूप (धवलाख्या टीका विलिख्य) धवला नामक टीका लिखकर (कषायप्राभृतके) कषायप्राभृत पर (चतसृणां विभक्तीना) चार विभक्तियो की (विंशतिसहस्रसद्ग्रन्थरचनया) बीस हजार गाथा प्रमाण रचना से (युक्ता) युक्त (जयधवलाख्या) जयधवला नामक टीका (विरच्य) टीका रचकर (दिव यात:) स्वर्ग चले गये (तत पुन) उसके बाद फिर (तच्छिष्यो) उनके शिष्य (जयसेन नामा गुरु) जयसेन (जिनसेन) नामक गुरु ने (तच्छेष) उसके शेष भाग को (चत्वारिंशता सहस्रै) चालीस हजार गाथा प्रमाण से (समापितवान्) समाप्त किया (एव जयधवला) इस प्रकार जयधवला नामक टीका (षष्ठिसहस्र ग्रन्थोऽभवत्) साठ हजार गाथा प्रमाण हुई ।

अर्थ—तदनन्तर वह भगवान वीरसेनाचार्य गुरु के आदेश से

चित्रकूटपुर से आकर वाटग्राम मे यहाँ के आनतेन्द्र द्वारा निर्मित जिन मन्दिर मे ठहर कर उसमें बप्पदेव गुरु रचित 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक टीका प्राप्त कर पूर्व षट्खण्ड से अर्थात् षट्खण्डागम के छठवें (महाबन्ध) खण्ड को छोडकर शेष पाँच खण्डो की उपरितम निबन्धनादि अठारह अधिकारो द्वारा 'सत्कर्म' नामक तथा छठे खण्ड को सक्षिप्त किया इस प्रकार छहो खण्डो की बहत्तर हजार गाथाओ प्रमाण प्राकृत सस्कृत मिश्रित 'धवला' नामक टीका को लिखकर कषायप्राभृत पर चार विभक्तियो की बीस हजार गाथाओ प्रमाण जयधवला नामक टीका लिखकर स्वर्गवासी हो गये। तत्पश्चात् उनके शिष्य जयसेन अपर नाम जिनसेन ने उसके (कषायप्राभृत जिसपर वीर सेनाचार्य ने जयधवला टीका लिखी) शेष भाग टीका को उससे आगे चालीस हजार गाथाओ प्रमाण मे लिखकर उसे समाप्त किया। इस प्रकार कषाय प्राभृत की जयधवला नामक टीका साठ हजार गाथा प्रमाण हुई है।

एवं श्रुतावतारो निरूपितः श्रीन्द्रनन्दियतिपतिना ।
श्रुतपञ्चम्यामृषिभिर्व्याख्येयो भव्यलोकेभ्यः ॥१८५॥

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (श्रीन्द्रनन्दियतिपतिना) श्री इन्द्रनन्दि नामक यतिपति के द्वारा (ऋषिभि) ऋषियो के द्वारा (भव्यलोकेभ्य) भव्यजीवो के लिये (व्याख्येय) व्याख्यान करने योग्य (श्रुतावतार) श्रुतावतार (श्रुतपञ्चम्या) श्रुतपचमी के दिन (निरूपित) निरूपित किया गया।

अर्थ—इस प्रकार श्री इन्द्रनन्दि मुनिराज ने भव्य जीवो को ऋषियो द्वारा व्याख्येय यह श्रुतावतार श्रुतपञ्चमी के दिन निरूपित किया।

यत्किंचिदत्र लिखितं समयविरुद्धं मयाऽल्पबोधेन ।
अपनीय तदागमतत्त्ववेदिनः शोधयन्तूच्चैः ॥१८६॥

अन्वयार्थ—(अल्पबोधेन मया) अल्पज्ञानवाले मेरे द्वारा (अत्र) इस श्रुतावतार नामक प्रतिज्ञापित ग्रन्थ मे (यत्किंचित्) जो कुछ भी (समय विरुद्ध) शास्त्र विरुद्ध (लिखितं) लिखा गया हो (आगमतत्त्ववेदिन) जो आगम-तत्त्व को जानने वाले (तद्-अपनीय) उसे हटा करके (उच्चै शोधयन्तु) अच्छी तरह शोधन कर लें।

अर्थ—ग्रन्थकार श्री इन्द्रनन्द्याचार्य अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते है कि इस प्रतिज्ञा किये हुए श्रुतावतार नामक ग्रन्थ मे मेरे द्वारा जो भी आगम विरुद्ध लिखा गया हो उसे दूरकर आगम-तत्त्व को जानने वाले अच्छी तरह शोधन कर लें।

श्लोकद्वयेन वृत्तेनैकेनाशीतिशतमितार्याभिः।
सप्तोत्तरद्विशत्यां ग्रन्थेनायं परिसमाप्तः ॥१८७॥

[श्लोकद्वयेन वृत्तेनैकेन चतुराशीतिशत मितार्याभि ।
सप्ताशीति च शतेन ग्रन्थेनाय परिसमाप्तो ॥]

नोट—उपरिलिखित गणना के अनुसार कोष्ठकगत गाथा होनी चाहिये।

अन्वयार्थ—(श्लोकद्वयेन) दो श्लोक (एकेन वृत्तेन) एक वृत्त (चतुरशोतिशत मिता आर्याभि.) एक सौ चौरासी आर्याछन्दो द्वारा इस तरह कुल १८७ गाथा प्रमाण (अय ग्रन्थः समाप्त) यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

अर्थ—दो श्लोक, एक स्रग्धरावृत्त एवं एक सौ चौरासी गाथाओ कुल एक सौ सत्तासी पदो में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इति श्रीमदिन्द्रनन्द्याचार्यकृतः श्रुतावतारः